इकाई 2 हिन्दी गद्य की विविध विधाएँ

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 साहित्य
2.3 नाटक
  2.3.1 नाटक का वर्गीकरण
  2.3.2 रेडियो नाटक
  2.3.3 दूरदर्शन नाटक
2.4 एकांकी
2.5 उपन्यास
2.6 कहानी
2.7 लघुकथा
2.8 निबंध
2.9 आलोचना
2.10 रेखाचित्र और संस्मरण
2.11 आत्मकथा और जीवनी
2.12 यात्रावृत्त
2.13 रिपोतार्ज
2.14 सारांश
2.15 शब्दावली
2.16 उपयोगी पुस्तकें
2.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम आपको गद्य की विविध विधाओं का परिचय देंगे । इसे पढ़ने के बाद आप :

- वाङ्मय एवं साहित्य में अंतर कर सकेंगे,
- साहित्यिक रचनाओं का वर्गीकरण कर सकेंगे,
- ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप साहित्य में विकसित नवीन विधाओं का परिचय दे सकेंगे,
- गद्य की विविध विधाओं का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे,
- गद्य की विविध विधाओं में अंतर कर सकेंगे, तथा
- एक-दूसरे से मिलती-जुलती गद्य विधाओं में मिलने वाली समानता को समझ सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

हिंदी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम की पहली इकाई में आपने हिंदी गद्य के विकास की जानकारी प्राप्त की है। इस इकाई में आपने गद्य और पद्य के अंतर को जाना है । साथ ही, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि के विकास को भी देखा है । नाटक, उपन्यास, कहानी आदि साहित्य की विधाएँ कहलाती हैं इन विधाओं की रचना में कुछ-न-कुछ अंतर अवश्य रहता है । प्रत्येक विधा अलग प्रकार के लेखन की माँग करती है । दूसरे शब्दों में किसी एक विधा की लेखन-शैली दूसरी विधा की लेखन-शैली से भिन्न होती है । चूँकि नाटक, उपन्यास, कहानी आदि गद्य-साहित्य की विधाएँ हैं, अतः इस इकाई में हम साहित्य की चर्चा करते हुए साहित्य शब्द का विशिष्ट अर्थ जानेंगे तथा गद्य की विविध विधाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे । विभिन्न विधाओं में अंतर करते हुए हम यह भी जानेंगे कि ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप इन विधाओं में किन नयी बातों का समावेश हुआ है ।

2.2 साहित्य

साहित्य शब्द का प्रयोग आज बहुत व्यापक अर्थों में होता है । जब हम किसी विषय के ग्रंथ की बात करते हैं तो वह ग्रंथ उस विषय का साहित्य कहलाता है । जैसे हम 'इतिहास-साहित्य' कहें तो इसका अर्थ हुआ इतिहास-विषय से संबंधित पुस्तकें । इसी प्रकार जब हम 'राजनीति-साहित्य' 'दर्शन-साहित्य'

या 'विज्ञान-साहित्य' कहते हैं तो इसका अर्थ होता है राजनीति, दर्शन एवं विज्ञान विषय से संबंधित पुस्तकें । वस्तुतः इस प्रकार के साहित्य के लिए "वाङ्मय" शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त है । यहाँ वाङ्मय एवं साहित्य के अंतर को जान लेना चाहिए ।

'वाङ्मय' के अन्तर्गत सभी प्रकार की रचनाएँ आ जाती हैं, पर 'साहित्य' में कुछ विशिष्ट रचनाएँ आती हैं । साहित्य में केवल उन्हीं रचनाओं की गणना की जाती है जिनसे पाठक को आनंद की प्राप्ति होती है । वाङ्मय और साहित्य के इस अन्तर को 'मानक हिन्दी कोश' में इन शब्दों में समझाया गया है:

"समस्त प्रकार की रचना को वाङ्मय कहते हैं । वाङ्मय और साहित्य में मुख्य अंतर यह है कि वाङ्मय के अन्तर्गत तो ज्ञान-राशि का वह सारा संचित भंडार आता है जो मानव को नई दृष्टि देता है और उसे जीवन संबंधी सत्यों का परिज्ञान कराता है । परन्तु साहित्य उक्त समस्त भंडार का वह विशिष्ट अंश है जो मनुष्य को एक अंतर्दृष्टि देता है जिससे रचनाकार किसी प्रकार की रचना करके आत्मोपलब्धि करता है और रसिक लोग उस कला का आस्वादन करके लोकोत्तर आनंद का अनुभव करते हैं ।" ("मानक हिन्दी कोश", संपादक रामचंद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

'वाङ्मय' और 'साहित्य' के अन्तर को आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'साहित्य सहचर' की सहायता से और सरलता से समझा जा सकता है । उन्होंने अपने इस ग्रंथ में समस्त प्रकार की रचनाओं को तीन वर्गों में बाँटा है:

सूचनात्मक साहित्य, विवेचनात्मक साहित्य तथा सृजनात्मक या रचनात्मक साहित्य । आइए, इन तीनों का अंतर जानें–

i) **सूचनात्मक साहित्य** : इसके अंतर्गत ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनके द्वारा हमें अनेक नयी बातों की जानकारी प्राप्त होती है । ऐसी रचनाओं को पढ़कर हम उनसे प्राप्त जानकारी से ही संतुष्ट हो जाते हैं । उदाहरण के लिए विश्वकोश, संदर्भ ग्रंथ आदि ।

ii) **विवेचनात्मक साहित्य** : इसके अंतर्गत ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनके द्वारा हमारा ज्ञान तो बढ़ता ही है, हमारी बोधन-शक्ति भी जागरूक बनी रहती है अर्थात् हमारे अंदर और अधिक जानने की इच्छा पैदा होती है । दर्शन, विज्ञान एवं गणित की पुस्तकें इस प्रकार के साहित्य के अंतर्गत आती हैं ।

iii) **रचनात्मक या सृजनात्मक साहित्य** : इस प्रकार की रचनाओं में ऐसी पुस्तकें शामिल हैं जिनमें लेखक हमारी जानी हुई बात को कुछ इस ढंग से कहता है कि हमारे अंदर उसे पढ़ने की ललक बढ़ती है । इस प्रकार की रचनाओं को पढ़कर हमें ऐसा लगता है मानों उसमें कही गयी बातें हमारी अपनी ही हों उदाहरण के लिए आप प्रेमचंद के उपन्यास "गोदान" को लें । इस उपन्यास का मुख्य पात्र होरी है । उसके सुख-दुःख के साथ हम भी जुड़ जाते हैं अर्थात् हम भी उसके सुख-दुःख में शामिल हो जाते हैं । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, *"इस प्रकार की रचनाएँ हमें सुख-दुःख की व्यक्तिगत संकीर्णता और दुनियावी झगड़ों से ऊपर ले जाती हैं और संपूर्ण मनुष्य जाति के—और भी आगे बढ़कर प्राणि-मात्र से सुख-दुःख, राग-विराग, आह्लाद-आमोद को समझ की सहानुभूतिमय दृष्टि देती हैं ।"* ("साहित्य सहचर", हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ०-2) कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि इसी श्रेणी की रचनाएँ हैं ।

समस्त प्रकार की रचनाओं के जो तीन वर्ग बताए गये हैं, उन्हें 'वाङ्मय' के अन्तर्गत रख सकते हैं पर उनमें से तीसरा "सृजनात्मक साहित्य" ही साहित्य शब्द के विशिष्ट अर्थ का बोधक है ।

इस पाठ में हम "साहित्य" शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में करेंगे ।

आइए, अब गद्य की प्रमुख विधाओं पर विचार करें ।

2.3 नाटक

नाटक अत्यंत प्राचीन विधा है, इसलिए हम सर्वप्रथम इस पर विचार करेंगे ।

आपने बचपन में अपने मोहल्ले, गाँव या शहर में कुछ नाटक देखे होंगे । और नहीं तो त्यौहार के दिनों में रामलीला, रासलीला आदि को देखा ही होगा । ये भी नाटक के पुराने प्रकार हैं । रामलीला, रासलीला आदि को देखकर यह बात तो आपकी समझ में आयी ही होगी कि इनमें किसी महापुरुष के

जीवन की घटनाओं का अनुकरण किया जाता है । जो कलाकार इन घटनाओं का अनुकरण कर इन्हें हमारे सामने पेश करते हैं, उन्हें 'अभिनेता' कहते हैं । वास्तव मे नाटक के मूल में अनुकरण या नकल का भाव है । यह शब्द 'नट्' धातु से बना है । 'नाटक' रूपक का एक भेद है। संस्कृत के आचार्यों ने 'रूपक' को भी 'काव्य' के अन्तर्गत रखा है । पर उन्होंने 'काव्य' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों में किया है । आज जिस अर्थ में हम 'कविता' शब्द का प्रयोग करते हैं, 'काव्य' शब्द का प्रयोग प्राचीन आचार्यों ने ठीक उसी अर्थ में नहीं किया है । उनके अनुसार 'काव्य' में कविता ही नहीं, नाटक भी सम्मिलित है ।

कान से सुनने (श्रवण) और आँख से देखने (दृष्टि) के आधार पर काव्य के दो भेद किये गये हैं– श्रव्य-काव्य और दृश्य-काव्य । जिन रचनाओं का आनंद मुख्य रूप से सुनकर लिया जाता है वे श्रव्य-काव्य के अन्तर्गत आती हैं । इस दृष्टि से कविता, कहानी, उपन्यास आदि श्रव्य-काव्य हैं । जिन रचनाओं की रचना प्रमुख रूप से चक्षु (आँख) के आधार पर की जाती है और जिनका आनंद देखकर लिया जाता है उन्हें दृश्य-काव्य कहते हैं । नाटक इसी वर्ग की रचना है, अतः यह दृश्य-काव्य है ।

दृश्य-काव्य होने के कारण नाटक की वास्तविक सफलता मंच पर खेले जाने में है । किसी नाटक को मंच पर देखकर या पढ़कर आप पाते हैं कि:

1) उस नाटक में किसी घटना का चित्रण है ।
2) यह घटना कुछ व्यक्तियों के जीवन में घटित हुई है ।
3) यह घटना किस काल अर्थात् समय में घटित हुई है ।
4) जिन व्यक्तियों की कथा नाटक में है, वे आपस में या स्वयं से वार्तालाप करते हैं और वार्तालाप का आधार है भाषा ।
5) नाटक के लिखने का कोई स्थान या देश है ।
6) नाटक लिखने का कोई न कोई कारण है ।
7) लिखा हुआ नाटक रंगमंच पर खेला जाता है जिसे 'अभिनय' कहते हैं ।

किसी भी नाटक में इन सात बातों का होना आवश्यक है । इन्हें हम नाटक के तत्व कहते हैं । इनके निम्नलिखित नाम हैं :

1) कथावस्तु
2) पात्र या चरित्र-चित्रण
3) देशकाल या परिवेश
4) संवाद और भाषा
5) शैली
6) अभिनेता
7) उद्देश्य

नाटक के इन तत्वों के आधार पर अब हम नाट्य-विधा का विवेचन करेंगे, किन्तु अंतर यह है कि संवाद, भाषा और शैली को हमने एक ही नाम दिया है – "संरचना शिल्प" । साथ ही, उद्देश्य के लिए हमने प्रतिपाद्य शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा है । इस पाठ में हम नाटक के तत्वों को निम्नलिखित नामों से विवेचित कर रहे हैं :

नाटक के तत्व

1) कथावस्तु
2) चरित्र-चित्रण
3) परिवेश
4) संरचना-शिल्प
5) अभिनेयता और
6) प्रतिपाद्य ।

आइए, अब इन तत्वों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करें ।

कथावस्तु

कथावस्तु का अर्थ है नाटक में प्रस्तुत घटनाचक्र । यह घटनाचक्र विस्तृत होता है और इसकी सीमा में नाटक की स्थूल घटनाओं के साथ पात्रों के आचार-विचारों का भी समावेश है । आपने शायद प्रसाद जी के चंद्रगुप्त नाटक का अध्ययन किया होगा । इस नाटक में तीन प्रमुख घटनाएँ हैं । अलक्षेंद्र का आक्रमण, नंदवंश का उन्मूलन और सिल्यूकस का पराभव । इस प्रकार उस नाटक की कथावस्तु घटनाबहुल है । "चंद्रगुप्त" नाटक में नंद-वंश के उन्मूलन से चंद्रगुप्त के राज्याभिषेक तक बहुत सारी घटनाएँ घटती हैं । नाटक में स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार की घटनाएँ होती हैं । जो घटनाएँ मंच पर दिखायी जाती हैं, उन्हें "दृश्य" तथा जिनकी केवल सूचना दी जाती है उन्हें "सूच्य" कहते हैं । नाटक की कथावस्तु ठोस और सुसंबद्ध होनी चाहिए । इस नाटक की घटनाएं, प्रसंग या स्थितियाँ,

परस्पर सुसंबद्ध हैं और नाटक के मूलभाव एवं चरित्र को उजागर करने में सहायक हैं। घटनाक्रम के द्वारा इतिहास की संगति एवं नाटक के पात्रों के चरित्र-विकास का सामंजस्य होता चला है । नाटक के पहले अंक में ही तक्षशिला के गुरूकुल में युवकों की मंडली द्वारा राजनीतिक क्रांति का प्रयत्न दिखाया गया है । वहीं से मैत्री, प्रेम और विरोध का आरंभ होता है । फिर विपक्षी दल का परिचय मिलता है। क्रमानुसार विरोधी-दलों का सामना होता है और विरोध की जटिलता बढ़ती है ।

नाटक की कथावस्तु के विकास की दृष्टि से डॉ० गोविन्द चातक ने इसके पाँच भाग स्वीकार किये हैं वे हैं :

1) प्रारंभ
2) नाटकीय स्थल
3) द्वन्द्व
4) चरम सीमा
5) परिणति

1) **प्रारंभ:** नाटककार को प्रारंभ पर विशेष ध्यान देना चाहिए । इस भाग में नाटक की कथावस्तु हमारे सामने आती है । इसका प्रारंभ कौतूहल एवं जिज्ञासा-युक्त होना चाहिए । चंद्रगुप्त नाटक का आरंभ भव्य एवं कौतूहलपूर्ण है । पाठक नाटक को पढ़ने के लिए आकर्षित होता है । नाटक का प्रारंभ तक्षशिला से हुआ है । तक्षशिला की प्रकृति मनोरम है और सांस्कृतिक दृष्टि से इसका महत्व है । गुरूकुल के भव्य वातावरण ने आरंभ को आकर्षक बना दिया है । चाणक्य जैसे आचार्य, सिंहरण एवं चंद्रगुप्त जैसे वीर राजकुमार छात्रों का योग, उनके ओजस्वी संवाद तथा तलवार की लपक-झपक देखते ही बनती है ।

2) **नाटकीय स्थल** : कथा के वे भाग जिनमें घटनाएँ ऐसा मोड़ लेती हैं कि जिनकी दर्शक को पहले से कल्पना नहीं होती और जिनसे वह कौतूहल का अनुभव करता है, नाटकीय स्थल कहलाते हैं । कथावस्तु के इस भाग में नाटक के पात्र परिस्थिति-विशेष में उलझ जाते हैं । नंद की सभा में चंद्रगुप्त की आँखों के सामने चाणक्य का तिरस्कार और अपमान होता है । चंद्रगुप्त की भी निंदा होती है । यहीं से नाटकीय स्थल प्रारंभ होता है ।

3) **द्वंद्व:** नाटक में द्वंद का विशेष महत्व है । द्वंद्व बाह्य भी हो सकता है और आंतरिक भी । प्रसाद ने "चंद्रगुप्त" में इन दोनों प्रकार के द्वंद्वों की सुंदर योजना की है । नंद द्वारा तिरस्कृत चाणक्य एवं चंद्रगुप्त मिलकर नंद वंश को समाप्त करने की योजना बनाते हैं । यही से पात्रों में संघर्ष शुरू होता है और द्वंद्व का जन्म होता है ।
नाटकीय स्थल और द्वंद्व का समावेश कुछ आलोचकों ने "विकास " के अंतर्गत किया है ।

4) **चरम सीमा** : द्वंद्व के परिणामस्वरूप नाटक चरम सीमा पर पहुँचता है । चन्द्रगुप्त में चाणक्य की कूटनीति से नंद वंश का नाश होता है । सिल्यूकस और चन्द्रगुप्त की मैत्री से युद्ध समाप्त हो जाता है और भारतीय शांति का अनुभव करते हैं ।

चंद्रगुप्त को प्रजा राजा बना लेती है । यही इस नाटक की चरम सीमा है ।

5) **परिणति** : नाटक के अंतिम भाग में परिणति की योजना की जाती है । अंत में नायक फल की प्राप्ति करता है और कोई जिज्ञासा शेष नहीं रह जाती । "चंद्रगुप्त" को राज्य और नायिका की प्राप्ति तो होती ही है, वह भारत को शत्रुओं के भय से मुक्त कराने में भी सफल होता है ।

चरित्र-चित्रण

नाटक में यों तो पात्रों की संख्या अधिक होती है, किंतु सामान्यतः एक-दो पात्र ही प्रमुख होते हैं । किसी नाटक के प्रधान पुरुष-पात्र को नायक और प्रधान अथवा मुख्य स्त्री-पात्र को नायिका कहते हैं। चरित्र-प्रधान नाटक में नाटक की कथावस्तु एक ही पात्र के इर्दगिर्द घूमती है । उदाहरण के लिए प्रसाद के नाटक "ध्रुवस्वामिनी" में प्रधान पात्र ध्रुवस्वामिनी एवं चंद्रगुप्त हैं । नाटक का सारा कार्य-व्यापार उन्हीं के इर्दगिर्द घूमता है और अंत में फल की प्राप्ति भी उन्हीं को होती है । यों, नायिका-प्रधान नाटक होने के कारण "ध्रुवस्वामिनी" को इस नाटक का प्रमुख पात्र स्वीकार किया जाता है ।

नोटः यदि अब तक आपने 'चन्द्रगुप्त' नाटक का अध्ययन न किया हो तो इस अंश को पढ़ने से पहले उसे पढ़ लें । इससे इस अंश के समझने में आपको सुविधा होगी ।

नाटक में चरित्र के विकास के लिए नाटककार पात्रों के अनुरूप संवादों की योजना करता है । पात्रों के वार्तालाप द्वारा उनके चरित्र को उजागर किया जाता है । पुराने नाटकों में पात्रों के मानसिक सोच-विचार के लिए एक विधि अपनाई जाती थी, जिसे "आकाश भाषित" कहा जाता था । पात्र दर्शकों के सुभीते के लिए स्वयं ही ज़ोर से पूछ लेता था "क्या कहा" ? अमुक बात; फिर स्वयं ही उस प्रश्न का उत्तर भी दे देता था । समकालीन नाटकों में वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से इसे भिन्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जो अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है ।

पात्रों के कार्यों एवं उनके पारस्परिक वार्तालाप से उनके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । जब कोई पात्र किसी अन्य पात्र के विषय में कोई बात कहता है तो उससे भी चरित्र-चित्रण में सहायता मिलती है । आप "चंद्रगुप्त" नाटक में चंद्रगुप्त के चरित्र को देखें । उसके कार्य से ही नहीं, उसके विषय में अन्य पात्रों के कथनों से भी उसकी वीरता पर प्रकाश पड़ता है । द्वंद्व के लिए वह सदैव प्रस्तुत रहता है, वह स्वाभिमानी है, वह दृढ़ प्रतिज्ञ है, अपने इष्ट साधन के लिए वह सिंकदर जैसे यशस्वी की सहायता भी स्वीकार नहीं करता । शत्रु-पक्ष भी उसकी वीरता की प्रशंसा करता है ।

परिवेश

परिवेश से मतलब है—देश-काल । किसी भी नाटक में वर्णित घटनाओं का संबंध किसी स्थान एवं काल से होता है । नाटक में यर्थाथता, सजीवता एवं स्वभाविकता लाने के लिए यह जरूरी है कि नाटककार घटनाओं का यथार्थ परिवेश चित्रित करे । ग्राम से संबंधित नाटक में ग्राम के परिवेश का चित्रण आवश्यक है, जैसे घर, नदी-नाले, खेत-खलिहान, प्रकृति, लोगों का पहनावा, चाल-ढाल आदि गाँव के अनुसार होने चाहिए । इसी प्रकार यदि घटना शहर की हो तो वहाँ के वास्तविक परिवेश का चित्रण अधिक स्वाभाविक होगा ।

नाटककार के लिए समय या काल का ध्यान रखना भी आवश्यक है । उदाहरण के लिए "चंद्रगुप्त" नाटक को ही लें । इसमें सिकंदर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है । उस समय छोटे-छोटे राज्यों में परस्पर शत्रुता थी । नंद ही शक्तिशाली राजा था । नाटक में तत्कालीन धार्मिक स्थिति का भी यथार्थ चित्रण हुआ है । तक्षशिला उस समय का विश्वप्रसिद्ध शिक्षा केंद्र था । उसका भी इसमें यथार्थ चित्रण है ।

निष्कर्ष यह है कि नाटककार के लिए अपने नाटक में वर्णित घटना के समय एवं परिवेश की सही जानकारी रखना आवश्यक है, अन्यथा नाटक में अस्वाभाविकता आ जाएगी ।

संरचना-शिल्प

इसमें हम नाटक की शैली, भाषा और संवाद की चर्चा करेंगे ।

शैली

रंगमंच की दृष्टि से नाट्य की कई शैलियाँ हैं-जैसे भारतीय शास्त्रीय नाट्य शैली, पाश्चात्य नाट्य शैली। इसके अतिरिक्त विभिन्न लोक-नाट्य शैलियाँ भी हैं—जैसे स्वांग, जात्रा, रामलीला, रासलीला आदि ।

प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से भी नाटक की कई शैलियाँ होती हैं—जैसे गली-मुहल्लों में, बिना रंगमंचीय उपकरणों की सहायता से खेले जाने वाले नाटकों की नुक्कड़ शैली, कविताओं पर आधारित नाटक या ऐसे नाटक जिनमें काव्य या गीति-तत्व की प्रमुखता हो-गीतिनाट्य शैली ।

आजकल नाटक और रंगमंच में विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यशैलियों के सम्मिश्रण के प्रयोग भी किए जाते हैं, जिन्हें किसी एक शैली में रखना संभव नहीं है ।

वास्तव में नाट्यशैली का निर्धारण उसी समय हो जाता है जब नाटककार नाट्यालेख की रचना करता है, क्योंकि नाटककार की रचना-प्रक्रिया में रंगमंच भी शामिल रहता है । स्पष्टतः नाटक लिखते समय नाटककार उसे अपने मन के रंगमंच पर अभिनीत होते हुए देखता भी है ।

संवाद

नाटक के विभिन्न पात्र एक दूसरे से जो वार्तालाप करते हैं, उन्हें संवाद कहते हैं । संवादों के द्वारा नाटक की कथा आगे बढ़ती है; नाटक के चरित्रों पर प्रकाश पड़ता है । नाटक में स्वगत-कथन भी

होते हैं । स्वगत-कथन में पात्र स्वयं से ही बात करता है । इनके द्वारा नाटककार पात्रों की मानसिक स्थिति का चित्रण करता है। किन्तु आवश्यकता से अधिक लंबा स्वगत-कथन नाटक में शिथिलता

ला देता है हमने आरंभ में ही बताया है कि नाटक दृश्य विधा है । दर्शक रंगमंच पर नाटक का अभिनय होते हुए देखते हैं, इसलिए नाटक के संवाद रंगमंच की विशेषताओं से युक्त होने चाहिए । "चंद्रगुप्त" नाटक की संवाद-योजना देखने पर लगता है कि इस नाटक के संवादों से कथावस्तु आगे बढ़ती है । अर्थशास्त्र से लेकर तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने तक की बात बढ़ती चली गयी है । आइए, एक उदाहरण देखें :

उदाहरण

आरंभ के दृश्य— *चाणक्य—"केवल तुम्ही लोगों को अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए ठहरा था ।" सिंहरण—"आर्य, मालवों को अर्थशास्त्र की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी शस्त्रज्ञान की है", चाणक्य—"अच्छा तुम अब मालवा में जाकर क्या करोगे ?" सिंहरण—"अभी तो मैं मालवा नहीं जाता । मुझे तो तक्षशिला की राजनीति पर दृष्टि रखने की आज्ञा मिली है ।"*

संवाद पात्रों के अनुकूल एवं स्वाभाविक हों । काल, परिस्थिति एवं पात्रों की स्थिति को ध्यान में रखकर संवादों की योजना करनी चाहिए । ऐतिहासिक नाटकों में उस युग के अनुकूल भाषा होनी चाहिए । अगर मुगल काल की कथा है तो उर्दू-मिश्रित भाषा का प्रयोग होना चाहिए और यदि गुप्तकाल की कथा है तो संस्कृत-निष्ठ भाषा का प्रयोग होना चाहिए ।

भाषा

नाटककार के लिए यह जरूरी है कि अपनी रचना में वह ऐसी भाषा का प्रयोग करे कि जिसमें स्वाभाविकता, रोचकता तथा सजीवता हो । विषय के अनुरूप भाषा का प्रयोग आवश्यक है । उदाहरण के लिए "चंद्रगुप्त" नाटक में संस्कृतनिष्ठ भाषा स्वाभाविक है । नाटक में स्वाभाविक बातचीत के रूप में भाषा का प्रयोग अपेक्षित है ।

अभिनेयता

कोई भी नाटककार नाटक की रचना रंगमंच पर खेले जाने के लिए ही करता है । रंगमंच पर खेला जाकर ही एक नाटक पूर्ण होता है । रंगमंच पर नाटक की प्रस्तुति जिस व्यक्ति के निर्देशन में संपन्न होती है, उसे निर्देशक कहते हैं । निर्देशक रंगमंचीय उपकरणों एवं अभिनेताओं के द्वारा उस नाटक को प्रेक्षकों (नाट्य-दर्शकों) के सामने प्रस्तुत करता है । इस प्रकार एक नाटक की यात्रा नाटककार से आरंभ होकर निर्देशक एवं अभिनेताओं से होती हुई प्रेक्षकों तक पहुँच कर पूर्ण होती है ।

रंगमंचीयता अथवा अभिनेयता को नाटक का प्राण माना जाता है । पात्रों की आकृति, आयु, वेशभूषा, चाल-ढाल, हाव-भाव आदि का उल्लेख नाटककार कोष्ठक में करता चलता है—इसे 'रंग-निर्देश' कहते हैं । नाटक की मंचीय प्रस्तुति में रंग-निर्देशों से सहायता मिलती है ।

प्रतिपाद्य

सफल नाटककार अपने नाटक के द्वारा गंभीर प्रतिपाद्य या उद्देश्य को हमारे सामने रखता है । नाटक की कथावस्तु, पात्र, परिवेश, शिल्प आदि तत्वों से महत्वपूर्ण है उसका प्रतिपाद्य । अनेक नाटककारों ने स्वयं अपने नाटकों के प्रतिपाद्य अथवा उद्देश्य की चर्चा की है । उदाहरण के लिए प्रसाद जी ने "चंद्रगुप्त", "विशाख" आदि ऐतिहासिक नाटकों के लिखने के उद्देश्य पर प्रकाश डाला है । उन्होंने "विशाख" (प्रथम संस्करण) की भूमिका में कहा है :

'इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है.....मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने कि हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।" निःसंदेह किसी नाटक के लिए प्रतिपाद्य का महत्व बहुत अधिक है । प्राचीन आचार्यों ने प्रतिपाद्य के स्थान पर "रस" शब्द का प्रयोग कर नाटक में उसी को सर्वोपरि माना था ।

नाटक में नाटककार जो कहना चाहता है, उसे प्रतिपाद्य या उद्देश्य कहते हैं । किसी भी नाटक के प्रतिपाद्य को समझने के लिए यह जरूरी है कि पहले हम नाटक को अच्छी प्रकार समझें, फिर उसके संदेश को पहचाने और उसके बाद नाटक के साहित्यिक एवं सामाजिक मूल्य का निर्णय करें ।

अंत को ध्यान में रखकर नाटक को दो कोटियों में विभाजित किया जाता है :
1) सुखांत—वे नाटक जिनका अन्त सुख में होता है ।
2) दुखांत—वे नाटक जिनका अंत दुःख में होता है ।

2.3.1 नाटक का वर्गीकरण

नाटक के भेद करते समय हमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि नाटक उस रूप में साहित्य का अंग नहीं है जिस रूप में कहानी, उपन्यास या कविता आदि हैं । नाटक की दृश्यवत्ता इसे साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न धरातल पर ला खड़ा करती है । नाटक का लिखित आलेख संपूर्ण नाट्य नहीं है । संपूर्ण नाट्य तो तब बनता है जब नाटककार द्वारा लिखित नाट्यालेख को निर्देशक अभिनेताओं के सहयोग से रंगमंच पर प्रेक्षक-समुदाय के सामने प्रस्तुत करता है । अब हम देखेंगे कि किन आधारों पर नाटक के भेद किए जा सकते हैं । एक आधार तो विषयवस्तु का हो सकता है । विभिन्न विषयों को लेकर नाटकों की रचना की जाती है । यदि नाटक का विषय ऐतिहासिक हो तो उसे हम ऐतिहासिक नाटक कहेंगे और यदि सामाजिक हो तो सामाजिक नाटक । इसी प्रकार नाटक के धार्मिक, पौराणिक आदि भेद भी किए जा सकते हैं ।

नाट्य का दूसरा वर्गीकरण नाटक की मंचीय प्रस्तुति को ध्यान में रखकर किया जाता है, क्योंकि नाट्यालेख (नाटक का लिखित रूप) को नाट्य बनने के लिए रंगमंच पर उसकी प्रस्तुति प्रायः आवश्यक मानी गयी है । यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि रंगमंच कई प्रकार के होते हैं—खुला रंगमंच, बॉक्स या बंद रंगमंच, चक्राकार या एक ही स्थान पर चक्र की तरह चारों ओर घूमने वाला रंगमंच आदि । कई नाटक लिखे ही इस तरह जाते हैं कि वे किसी विशेष प्रकार के रंगमंच पर ही प्रस्तुत हो सकते हैं । जैसे चक्राकार रंगमंच पर प्रस्तुत होने वाले नाटक में यह विशेषता होगी कि वह केवल एक ओर से ही दर्शकों के सामने नहीं होगा, बल्कि मंच के चारों ओर दर्शक बैठे होंगे और अभिनेता इस प्रकार अभिनय करेंगे कि चारों ओर बैठे दर्शकों को देख सकें, उन्हें अभिनय दिखा सकें । स्पष्ट शब्दों में, हर ओर बैठा दर्शक अभिनेताओं के क्रिया-कलाप को देख सकेगा ।

2.3.2 रेडियो नाटक

नाटक को रंगमंच पर देखने के अलावा आप रेडियो पर भी अक्सर नाटक सुनते होंगे । रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटक से अलग एक नयी विधा है । मूलतः नाटक दृश्य विधा है, किन्तु रेडियो नाटक में शब्द और ध्वनि का विशेष महत्व है । रेडियो नाटक मंचीय नाटक से इस अर्थ में भिन्न है कि जहाँ मंचीय नाटक में विभिन्न रंगमंचीय उपकरणों का प्रयोग होता है तथा अभिनेताओं के अभिनय, हाव-भाव, गति आदि के द्वारा दर्शकों तक बात पहुँचाई जाती है, वहाँ रेडियो नाटक में केवल ध्वनि के माध्यम से ही सब कुछ करना होता है । इसमें ध्वनि के द्वारा ही अभिनेताओं का चलना-फिरना, हँसना-रोना, आह-भरना आदि प्रस्तुत किया जाता है ।

रेडियो नाटक बहुत हद तक संवादों पर भी निर्भर करता है । रेडियो नाटक के संवाद लिखे ही इस प्रकार जाते हैं कि उनमें ऐसी बातें, ऐसे संकेत दे दिए जाएँ जिनकी कि मंचीय नाटक में आवश्यकता नहीं होती । जैसे—मंचीय नाटक पर यदि कोई अभिनेता फटे कपड़े पहन कर आता है तो दर्शकों को देखने मात्र से ही पता चल जाता है कि उसने फटे कपड़े पहन रखें हैं, जबकि रेडियो नाटक में इस स्थिति की अभिव्यक्ति किसी पात्र के संवाद से ही करनी पड़ेगी ।

रेडियो नाटक के बारे में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें विभिन्न भावपूर्ण स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए पार्श्व संगीत का बहुत प्रयोग होता है । जैसे किसी की मृत्यु पर करुण संगीत का बजना, किसी आश्चर्यजनक घटना पर चौंकाने वाली धुन का बजना आदि ।

रेडियो नाटक रंगमंचीय नाटक से इस अर्थ में भिन्न है कि रंगमंचीय नाटक में तो अन्य ललित कलाएँ—चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्य आदि सम्मिलित रहती हैं, किन्तु रेडियो नाटक में इनका उपयोग उस रूप में नहीं किया जा सकता । केवल ध्वनि के सहारे नृत्य की गति का बोध कराया जा सकता है ।

2.3.3 दूरदर्शन नाटक

आजकल तो आप लगभग हर रोज़ रात को दूरदर्शन पर नाटक देखते होंगे । अब तो दूरदर्शन पर धारावाहिक नाटक दिखाये जाते हैं जिन्हें 'सीरियल' कहा जाता है । दूरदर्शन नाटक भी नाटक की एक नयी विधा है जो फिल्म के अधिक करीब है । दूरदर्शन नाटक और रंगमंचीय नाटक में बहुत अंतर है । सबसे बड़ा अंतर तो यह है कि दूरदर्शन नाटक में कैमरे का इस्तेमाल होता है । यहाँ हर

चीज़ कैमरे की आँख से ही देखी जाती है । यह बात तो आप सभी जानते होंगे कि दूरदर्शन में और फ़िल्म में भी 'कैमरा ट्रिक' का बहुत इस्तेमाल किया जाता है । दूसरा अंतर यह है कि रंगमंच पर सब कुछ नहीं दिखाया जा सकता, क्योंकि रंगमंच की अपनी सीमाएँ हैं, किन्तु दूरदर्शन पर लगभग सभी कुछ दिखाया जा सकता है । उदाहरण के लिए यदि रंगमंच पर कश्मीर का दृश्य दिखाना हो तो यह कार्य परदे के द्वारा सम्पन्न हो सकता है, किंतु दूरदर्शन पर यह यथार्थ दृश्य के रूप में ही दिखाया जाएगा ।

तीसरा अंतर यह है कि रंगमंच पर अभिनेताओं और दर्शकों का प्रत्यक्ष संबंध होता है । यदि कोई अभिनेता मंच पर कोई भूल कर बैठे तो वह साफ दिखाई देगी और उससे नाट्य-प्रस्तुति में भी अंतर आ जाएगा, लेकिन दूरदर्शन नाटक में ऐसी भूलों की गुंजाइश प्रायः नहीं रहती, क्योंकि भूल हो जाने की स्थिति में यहाँ दृश्य को बार-बार "शूट" किया जाता है, तब कहीं जा कर वह 'ओ॰ के॰' होता है ।

2.4 एकांकी

हिन्दी एकांकी पूर्ण रूप से एक नयी विधा है । आधुनिक कहानी की भाँति हिन्दी एकांकी पर भी पश्चिम का प्रभाव है । कुछ आलोचकों के मत में एकांकी को पश्चिम से जोड़ना बहुत ठीक नहीं है, क्योंकि रूपक और उपरूपक के कुछ भेद यथा-व्यायोग, भाण, प्रहसन, वीथी, सट्टक, विलासिका, प्रकारणिका आदि एक ही अंक के थे । अतः भारत में 'एकांकी' की परंपरा रही है । भास का 'उरुभंग' और 'मध्यम व्यायोग' एकांकी के निकट हैं । किन्तु तुलना करने पर आधुनिक एकांकी एवं संस्कृत के रूपक में स्पष्ट अंतर दिखता है । कथावस्तु एवं शिल्प-दोनों दृष्टियों से रूपक एवं एकांकी में अंतर है । आधुनिक एकांकी की मूल प्रेरणा जीवन का द्वन्द्व और संघर्ष है । मानसिक विश्लेषण को आधार बनाकर आधुनिक एकांकी जीवन की अभिव्यक्ति को अपना मुख्य उद्देश्य मानता है । संस्कृत के रूपक में संघर्ष या द्वन्द्व का प्रायः अभाव था ।

एकांकी का उद्भव एवं विकास पश्चिम में भी नया ही है । पश्चिम में प्राचीन काल में बड़े-बड़े नाटक ही खेले जाते थे । नाटक के बीच दृश्य-परिवर्तन के लिए समय निकालने के लिए, छोटे-छोटे नाटक खेले जाते थे जिन्हें "कर्टन रेंजर्स" कहते थे । ऐसे नाटकों का स्वतंत्र विकास वहाँ भी नहीं हो पाया । आप सोच रहे होंगे कि एकांकी का विकास क्यों हुआ ? इसका उत्तर है—समय की कमी के कारण । विश्व युद्ध के बाद आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के युग में मनुष्य के पास समय की कमी हो गयी । जीवन की भाग-दौड़ में वह कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक कार्य करना चाहता है, यहाँ तक कि मनोरंजन के लिए भी वह कम-से-कम समय देना चाहता है । वर्तमान युग में व्यक्ति की व्यस्तता और समय के अभाव के कारण अनेक ऐसी विधाओं का विकास हुआ है जो आकार में लघु हैं । एकांकी का विकास भी इसी कारण हुआ है ।

प्रसिद्ध एकांकीकार डॉ॰ रामकुमार वर्मा के अनुसार *"एकांकी में एक घटना होती है और वह नाटकीय कौशल से चरम सीमा तक पहुँचती है।"* एकांकी में एक सम्पूर्ण कार्य एक ही स्थान और समय में होना चाहिए । एकांकी में वर्णित कथावस्तु अलग-अलग स्थानों एवं कालों में घटित नहीं होनी चाहिए। अधिकांश एकांकी एक ही अंक और एक ही दृश्य में समाप्त हो जाते हैं जिससे प्रभाव की एकता एवं घटनाओं की एकसूत्रता बनी रहती है ।

नाटक के समान एकांकी में भी छः तत्व होते हैं । (1) कथावस्तु (2) चरित्र चित्रण (3) परिवेश (4) सरंचना शिल्प (5) रंगमंचीयता और (6) प्रतिपादय । लेकिन नाटक के समान एकांकी में न तो कथावस्तु के विस्तार का अवकाश रहता है और न ही पात्रों की बहुलता का । ऐसा भी नहीं कि नाटक को छोटा करके एकांकी बना लिया जाए । एकांकी सर्वथा स्वतंत्र विधा है । नाटक में घटनाओं की बहुलता रहती है, जबकि एकांकी पात्र, घटना, संवाद आदि की दृष्टियों से सीमित होता है । नाटक में अनेक अंक होते हैं, किंतु एकांकी में एक ही अंक होता है ।

कथानक : एकांकी का कथानक भी इतिहास, राजनीति, पुराण, लोकतंत्र, समाज या चरित्र विशेष से लिया जा सकता है । उसका संबंध जीवन की किसी एक घटना या पहलू से होता है । इसके कथानक के मुख्य पाँच भाग होते हैं (1) प्रारंभ (2) नाटकीय स्थल (3) द्वंद्व (4) चरम सीमा और (5) परिणति । उदाहरण के लिए हम डॉ॰ रामकुमार वर्मा के एकांकी "दीपदान" को लें । इसमें कथानक एक महत्वपूर्ण घटना पर आधारित है—कथानक का विस्तार इसमें नहीं है । पन्ना धाय द्वारा चित्तौड़ के राजकुमार की जीवन-रक्षा के लिए अपने पुत्र को बलिदान करना ही इसकी कथावस्तु है, पर इसे नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

कथानक का प्रारंभ नाटकीय ढंग से तुलजा भवानी की पूजा के अवसर पर होता है । शामली का आकार पन्ना धाय से यह कहना कि सिपाहियों ने महल को चारों ओर से घेर लिया है, नाटकीय स्थल है ।

कथानक में द्वन्द्व उस समय आता है जब पन्ना कुँअर की जगह अपने पुत्र चंदन को सुलाने की बात सोचती है । कथानक में रनवीर द्वारा चंदन पर तलवार से आघात करना चरम सीमा है ।

चरित्र-चित्रण : एकांकी में पात्रों की बहुलता नहीं रहती । साधारणतया एक ही मुख्य पात्र होता है । मुख्य पात्र के आगे-पीछे सारी घटनाएँ घूमती हैं । 'दीपदान' में पन्ना ही मुख्य पात्र है । उसके कार्य एवं संवादों से उसका चरित्र उभरा है । पन्ना के दृढ़, स्वामी-भक्त एवं राष्ट्र-भक्त चरित्र के साथ रनवीर के अत्याचारी रूप को उभार कर एकांकीकार ने चरित्रों की स्पष्ट पहचान कराई है ।

परिवेश : एकांकी में किसी कार्य-विशेष की प्रधानता रहती है । यह कार्य किसी काल-विशेष में घटित होता है और इसके घटने का कोई स्थान होता है । इन्हें देश-काल और वातावरण अथवा परिवेश कह सकते हैं । ऐतिहासिक एकांकियों में तो परिवेश का और भी अधिक महत्व होता है ।

एकांकी में एक स्थान, एक काल एवं कार्य की प्रधानता रहती है । दीपदान एकांकी से आप स्पष्ट पहचान सकते हैं कि इसमें एक स्थान मेवाड़, एक काल तथा एक कार्य की योजना की गई है । राज-परिवार से संबंधित परिवेश का यथार्थ चित्रण इस एकांकी में है ।

संरचना शिल्प

आप जान चुके हैं कि संरचना-शिल्प का संबंध एकांकी की भाषा शैली और संवाद-योजना से है ।

भाषा-शैली : प्रत्यक्ष प्रदर्शन की विधा होने के कारण एकांकी की शैली नाटकीय होती है । उसमें विचारों-भावों की अभिव्यक्ति केवल भाषा के द्वारा ही नहीं, पात्रों की वेश-भूषा, उनकी भाव-भंगिमा, कार्य, रंगमंच के दृश्य और वातावरण, गीत-संगीत, ध्वनि-प्रकाश आदि के द्वारा भी होती है । रेडियो के लिए लिखे जाने वाले एकांकियों की शैली मंच पर खेले जाने वाले एकांकियों से भिन्न होती है । रेडियो में ध्वनि का विशेष महत्व है जबकि मंच पर अभिनीत होने वाले एकांकियों में रंग-निर्देश का । कुछ एकांकी ऐसे भी होते हैं जो पहले रेडियो पर प्रसारण के लिए लिखे जाते हैं और बाद में उन्हें मंच के अनुरूप बना लिया जाता है । उस स्थिति में उनके शिल्प में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है । डॉ० रामकुमार वर्मा का 'दीपदान' ऐसा ही एकांकी है ।

एकांकी की भाषा सहज, स्वाभाविक, सजीव और रोचक होनी चाहिए । भाषा जन-जीवन के जितना निकट होगी, उसे समझना उतना ही सहज होगा । एकांकी की भाषा भावों की अभिव्यक्ति के साथ चरित्र-चित्रण का साधन भी है । उसी के द्वारा पात्रों के स्वभाव की विशेषताओं, गुण-दोषों आदि पर भी प्रकाश पड़ता है, इसलिए एकांकी के प्रत्येक पात्र की अपनी भाषा होती है । सभी पात्रों के लिए समान भाषा से एकांकी की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है । अच्छे एकांकियों में भाषा पात्रों के अनुसार बदलती है ।

संवाद : एकांकीकार कम से कम संवादों में भावों को व्यक्त करने का प्रयत्न करता है । संवाद परिस्थिति एवं पात्रों की मनोदशा को प्रकट करने वाले होने चाहिए । 'दीपदान' एकांकी के मुख्य पात्र पन्ना के संवाद उसके चरित्र की दृढ़ता को प्रकट करते हैं : "चित्तौड़ राग-रंग की भूमि नहीं है। यहाँ आग की लपटें नाचती हैं ।"

रंगमंचीयता अथवा अभिनेयता

नाटक के समान रंगमंचीयता एकांकी का भी प्राण-तत्व है । एकांकीकार के लिए भी अभिनेयता अथवा रंगमंचीयता का ध्यान रखना उतना ही आवश्यक है जितना कि नाटककार के लिए । एकांकी की वास्तविक सफलता भी रंगमंच पर अभिनीत होने में ही है । एकांकी में संक्षिप्तता आवश्यक है, अतः एकांकीकार के रंग-निर्देश संक्षिप्त होने चाहिए । एकांकी के लिखित रूप को निर्देशक अभिनेताओं तथा अन्य रंगकर्मियों के सहयोग से दर्शकों तक संप्रेषित करता है, अतः उसकी सफलता अभिनेताओं के अभिनय पर निर्भर करती है ।

प्रतिपाद्य : एकांकीकार अपनी रचना के द्वारा कोई-न-कोई संदेश देता है । वह स्पष्ट शब्दों में न कहकर कथानक, कार्य-व्यापार, चरित्र आदि के माध्यम से अपना उद्देश्य दर्शकों-पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करता है । एकांकीकार ने एकांकी में क्या कहा है, यह एकांकी को ठीक से समझने पर

पता चलेगा । 'दीपदान' एकांकी को ही लें । इसमें त्याग एवं बलिदान का आदर्श रखा गया है । देश के लिए पुत्र जैसे अनमोल रत्न को भी माँ ने बलिदान कर दिया है । देश की बलिवेदी पर सर्वस्व त्याग की प्रेरणा देना इस एकांकी का उद्देश्य है ।

नाटक और एकांकी में अंतर

नाटक और एकांकी में कुछ मूलभूत अंतर हैं:

नाटक	एकांकी
1) नाटक की पृष्ठभूमि और कथानक विस्तृत होता है ।	1) एकांकी में पृष्ठभूमि अथवा क़थानक के विस्तार का अवसर नहीं रहता ।
2) नाटक में जीवन के विविध पहलुओं पर विचार किया जाता है ।	2) एकांकी में जीवन के किसी एक पक्ष को लिया जाता है ।
3) नाटक में अनेक पात्र होते हैं ।	3) एकांकी में कम-से-कम पात्र रखे जाते हैं ।
4) नाटक में छोटी-छोटी घटनाओं का विवरण दिया जा सकता है ।	4) एकांकी में छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन नहीं किया जा सकता ।
5) नाटक में किसी विचार को विस्तार से प्रस्तुत किया जा सकता है ।	5) एकांकी में विचार को संकेत द्वारा रखा जाता है ।
6) नाटक में स्थान और काल की सीमा का विस्तार हो सकता है ।	6) एकांकी में स्थान, समय और घटना के विस्तार के लिए अवसर नहीं रहता । संक्षिप्ति एकांकी के लिए आवश्यक है ।

बोध प्रश्न

1 वाङ्मय एवं साहित्य में क्या अंतर है ? पाँच पंक्तियों में बताइए ।

.....

.....

.....

.....

.....

2 नाटक के तीन प्रमुख तत्त्व हैं—पात्र या चरित्र-चित्रण, देशकाल या परिवेश, संवाद और भाषा । इनके अतिरिक्त नाटक के अन्य चार तत्वों के नाम लिखिए :

i) ii)
iii) iv)

3 वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप नाटक के क्षेत्र में कौन से नये रूप उभरे हैं ? केवल दो के नाम लिखिए ।

.....

.....

4 नाटक एवं एकांकी में मुख्य तीन अंतर बताइए ।

.....

.....

.....

5 उपर्युक्त शब्दों के द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) नाटक.....काव्य है ।
ii) रेडियो नाटक में.....का विशेष महत्व है ।
iii) एकांकी में.....अंक होता है ।

2.5 उपन्यास

उपन्यास साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा है । आपमें से कुछ लोगों ने अवश्य ही कोई-न-कोई उपन्यास पढ़ा होगा । उपन्यास पढ़ते समय ऐसा महसूस किया होगा कि जैसे आपकी अपनी ही बात कथा के माध्यम से कही जा रही हो । आपने यह भी अनुभव किया होगा कि उपन्यास की कथा एवं पात्र आपके परिवेश के ही हैं । यही नहीं, आप उपन्यास के पात्रों के सुख-दुःख से प्रभावित भी होते हैं । ऐसा क्यों हैं ? वास्तव में उपन्यास के माध्यम से लेखक मानव जीवन की तस्वीर को इस निपुणता से प्रस्तुत करता है कि हम उसमें डूब जाते हैं और उसमें वर्णित कथा हमें अपनी-सी लगने लगती है । उपन्याय सम्राट प्रेमचंद ने उपन्यास के बारे में अपना यह मत प्रकट किया है : *"मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है ।"* उपन्यास में जीवन का व्यापक चित्रण किया जा सकता है, अतः उसका आकार प्रायः बड़ा हो जाता है ।

आपने इकाई एक में यह पढ़ा है कि हिन्दी में उपन्यास विधा का आरंभ भारतेंदु युग में हुआ । आपने यह भी जाना कि आरंभ में हिन्दी-उपन्यास की शुरूआत अनुवादों के द्वारा हुई । बंगला, मराठी, अंग्रेज़ी आदि से अनूदित उपन्यास हिन्दी पाठकों के सामने आए फिर हिन्दी में मौलिक उपन्यास लिखे जाने लगे । समय एवं परिस्थिति का प्रभाव लेखकों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । काल-विशेष की परिस्थितियाँ लेखक को भी प्रभावित करती हैं । हिन्दी उपन्याय भी समय एवं परिस्थिति से प्रभावित होता रहा है और उपन्यास का वर्तमान रूप भी काल एवं परिस्थिति से प्रभावित है । हम उपन्यास के तत्वों के सभी देखते चलेंगें कि किस प्रकार इस विधा में परिवर्तन आया है ।

हिन्दी में आरंभ में तिलस्मी एवं ऐय्यारी उपन्यास लिखे गये । तिलस्मी उपन्यासों में घटनाएँ तिलस्म से पूर्ण रहती थीं—अर्थात् ऐसे उपन्यासों में इन्द्रजाल, जादू, अद्भुत कारनामें; अलौकिक व्यापार एवं चमत्कार से पूर्ण घटनाएँ होती थीं । इस प्रकार के उपन्यासों में नायक वेश बदल कर विकट और विलक्षण कार्य करता था । जासूसी उपन्यास भी उसी प्रकार की घटनाओं से पूर्ण होते थे । जासूसी उपन्यास की खास बात यह होती है कि इसमें नायक गुप्त रूप से किसी भेद या बात का पता लगाने के लिए चलता है । वह अद्भुत कारनामे करता है । बाद में हिन्दी में ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी लिखे गये ।

उपन्यास के तत्व

वह कसौटी जिसके आधार पर किसी उपन्यास के गुण-दोषों की परीक्षा की जाती है तत्व कहलाता है । उपन्यास के निम्नलिखित तत्व हैं :

1) कथावस्तु
2) चरित्र-चित्रण
3) परिवेश
4) संरचना-शिल्प
5) प्रतिपाद्य

कथावस्तु : कथावस्तु उपन्यास का मेरुदण्ड है । विभिन्न महत्वपूर्ण घटनाओं का क्रमबद्ध कलात्मक व किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति-हेतु किया गया "संयोजन" कथानक कहलाता है ।

प्रत्येक प्रकार के उपन्यास में कथावस्तु अनिवार्य रूप से होती है, इसके बिना रचना की कल्पना ही नहीं की जा सकती । प्रमुख कथावस्तु अकेले नहीं आती । इसके साथ कुछ सहयोगी कथाएँ भी चलती हैं—रचना की मुख्य कथावस्तु के साथ कुछ अन्य प्रासंगिक कथाओं का संयोजन भी रहता है । मुख्य कथा को 'आधिकारिक कथा' तथा सहायक कथा को "प्रासंगिक कथा" कहते हैं ।

उपन्यास की कथा ठोस एवं श्रृंखलाबद्ध होनी चाहिए, अनावश्यक प्रसंगों से बचना चाहिए । उपन्यास के मूलभाव या चरित्र के विकास के लिए कथावस्तु का आयोजन जरूरी है । कथावस्तु जीवन की वास्तविकता से जुड़ी होनी चाहिए । पहले के उपन्यासों में कल्पना का अधिक स्थान होता था, किन्तु आज यथार्थ जीवन की घटनाओं को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है ।

उपन्यास की कथावस्तु का विकास पहले वर्णन द्वारा होता था किन्तु आज उपन्यास की कथा किसी भी रूप में आरंभ हो सकती है । आज के उपन्यासों में जीवन संदर्भों से कथावस्तु का आरंभ होता है और जीवन के विभिन्न पहलुओं के द्वारा कथा का विकास होता है ।

उदाहरण के लिए आप 'गोदान' को लें । इसमें कथा होरी के जीवन से आरंभ होती है । उपन्यासकार ने होरी के सम्पूर्ण जीवन को कथा का अधार बनाया है । होरी और धनिया की कथा मुख्य कथा है । प्रासंगिक कथा के रूप में मेहता और मालती, गोबर और झुनिया, मातादीन और सिलिया आदि की कथाएँ मुख्य कथा को प्रभावशाली बनाने के लिए ली गयी हैं ।

चरित्र चित्रण : जिन व्यक्तियों के जीवन की घटना को लेकर कथा का आयोजन किया जाता है, वे उपन्यास के पात्र कहलाते हैं । उदाहरण के तौर पर होरी के जीवन में भिन्न-भिन्न प्रकार की जो घटनाएँ घटीं, प्रेमचंद ने उनके आधार पर 'गोदान' की कथावस्तु का विकास किया, अतः होरी इस उपन्यास का एक पात्र है । सामान्यतः उपन्यास में एक या दो मुख्य पात्र होते हैं । अन्य महत्वपूर्ण पात्र मुख्य पात्र के चरित्र को सशक्त बनाने के लिए रचे जाते हैं । उदाहरण के लिए 'गोदान' में धनिया, गोबर, सिलिया, झुनिया आदि पात्र होरी के चरित्र को सम्पूर्ण रूप से विकसित एवं सशक्त बनाने के लिए रचे गये हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चरित्र के विकास का अवसर अधिक होता है, क्योंकि इसमें चरित्र या पात्र ही उपन्यास का विषय होता है । उदाहरण के लिए जैनेन्द्र के "त्याग पत्र" में बुआ का तथा अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' में शेखर का चित्रण मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ है ।

उपन्यासकार पात्रों के कार्यों एवं वार्तालाप से तो उनके चरित्र को प्रकाशित करता ही है, कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप से भी उनका चरित्र-चित्रण कर देता है । प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की इस विधि को अपनाया है ।

परिवेश : परिवेश के अन्तर्गत देशकाल अर्थात् वह स्थान और समय आता है जहाँ कहानी की घटना घटित हुई । उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक है कि वह देश एवं काल का यथार्थ रूप प्रस्तुत करे । यदि ग्राम की कथा है तो पूरा परिवेश ग्रामीण होना चाहिए । मिट्टी के घर, तालाब, खेत, पगडंडी, पशुधन, ग्रामीण वेशभूषा, रीति-रिवाज, गँवई भाषा आदि ग्रामीण परिवेश की उपस्थिति में सहायक हो सकते हैं । उदाहरण के लिए, "गोदान" में गाँव की कथा कही गयी है । उपन्यास के आरंभ में ही गाँव का रूप सामने आ जाता है : होरीराम ने दोनो बैलों को सानी-पानी देकर अपनी धनिया से कहा—"गोबर को ऊँख गोड़ने भेज देना ।" उपन्यास में परिवेश को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर रहता है—उपन्यासकार विस्तृत ब्यौरे से परिवेश का जीवंत चित्रण कर सकता है परिवेश के वास्तविक चित्रण के लिए लेखक को उस स्थान और काल की ठीक-ठीक जानकारी होनी चाहिए, अन्यथा वह अस्वाभाविक चित्रण कर बैठेगा । प्रेमचन्द को ग्रामीण परिवेश की सही जानकारी थी । वे स्वयं उस परिवेश में पले-बढ़े थे, अतः 'गोदान' में उन्होंने ग्रामीण परिवेश का यथार्थ चित्रण किया है ।

संरचना शिल्प

शैली : उपन्यासकार चाहे किसी भी विषय पर उपन्यास लिखे, उसके लिखने का ढंग अपना होता है । प्रत्येक उपन्यासकार अपने तरीके से कथा को प्रस्तुत करता है । इसी तरीके को शैली कहते हैं । आपने अनुभव किया होगा कि प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी अलग शैली होती है । एक उपन्यासकार की कई रचनाओं में भी विषयवस्तु के अनुसार शैली बदल जाती है । उपन्यासकार प्रत्यक्ष, परोक्ष, पत्र, डायरी, पूर्वदीप्ति आदि शैलियों का प्रयोग कर सकता है ।

लेखक की व्यक्तिगत रुचि और विषयवस्तु के अनुसार शैली में परिवर्तन होता है । उदाहरण के लिए आप प्रेमचंद के 'गोदान', 'रंगभूमि', 'सेवासदन' आदि उपन्यासों में शैली की विभिन्नता देख सकते हैं । व्यक्तिगत रुचि के अनुसार प्रेमचंद ने बाह्य घटनाओं पर और जैनेन्द्र ने मनोविश्लेषण पर अधिक जोर दिया है, जिससे उनकी शैलियाँ भिन्न-भिन्न हो गयी हैं ।

संवाद : उपन्यास के पात्र आपस में जो वार्तालाप करते हैं । उन्हें हम संवाद कहते हैं । संवादों से उपन्यास की कथा आगे बढ़ती है तथा पात्रों के चरित्र पर प्रकाश भी पड़ता है । वार्तालाप के द्वारा पात्रों के विचार जाने जा सकते हैं । उपन्यास में पात्रों के अनुकूल संवादों का होना आवश्यक है, अन्यथा कथा में अस्वाभाविकता आ जायेगी । 'गोदान' में मेहता शिक्षित पात्र हैं । उसका यह संवाद उसके शिक्षित होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है : "आप मुझे लज्जित कर रही हैं देवी जी ।"

नोट : इस अंश को पढ़ने से पहले यदि आप प्रेमचन्द के 'गोदान' को पढ़ लेंगे तो इसे समझने में आपको अधिक सुविधा होगी।

भाषा : उपन्यासकार भाषा के माध्यम से रचना में सजीवता लाता है । सही भाषा के प्रयोग से पात्र सजीव एवं स्वाभाविक लगते हैं । यदि उपन्यासकार अपना विचार रख रहा हो तो उसकी अपनी भाषा होनी चाहिए, किन्तु पात्रों की संवादों की भाषा पात्रों के मनःस्थिति के अनुरूप होनी चाहिए । सफल उपन्यासकार प्रायः सरल एवं बोलचाल की भाषा का प्रयोग करता है । 'गोदान' के पात्र अक्सर अपने चरित्र के अनुकूल भाषा बोलते हैं, फलतः इसमें स्वाभाविकता की रक्षा हुई है ।

प्रतिपाद्य : किसी भी रचना के पीछे कोई-न-कोई उद्देश्य होता है । सफल उपन्यासकार वही है जो अपना उद्देश्य सहजता से पाठकों तक पहुँचा दे । 'गोदान' उपन्यास लिखने के पीछे प्रेमचंद का क्या उद्देश्य था ? वे गाँव में पले थे । गाँव में किसानों की आर्थिक दुर्दशा उन्होंने देखी थी । किसानों का शोषण कैसे होता है, यह उन्होनें देखा था । कृषक-जीवन के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करना तथा उनके शोषण को दिखाना उनका उद्देश्य था, जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है ।

2.6 कहानी

उपन्यास के समान कहानी भी अत्यंत लोकप्रिय विधा है । इकाई एक में आपने पढ़ा है कि हिन्दी में कहानी का प्रारंभ अनूदित कहानियों से हुआ । मौलिक कहानी-रचना बाद में शुरू हुई । आधुनिक हिंदी कहानी पर पश्चिम का प्रभाव है । अमरीकी कहानीकार "एडगर एलन पो" ने कहा है, *"कहानी एक ऐसा आख्यान है जो एक ही बैठक में पढ़ा जा सके और पाठक पर किसी एक प्रभाव को उत्पन्न कर सके ।"* उसमें उन सभी बातों को छोड़ दिया जाता है जो इस प्रभाव को अग्रसर करने में सहायक नहीं होतीं । वह अपने आप में पूर्ण होती है ।

आइए, अब हम कहानी के तत्वों की चर्चा करें ।

कहानी के तत्व

1) कथावस्तु
2) चरित्र-चित्रण
3) परिवेश
4) संरचना-शिल्प
5) प्रतिपाद्य

कथावस्तु : जैसा कि उपन्यास की चर्चा करते हुए बताया जा चुका है—कथावस्तु का अर्थ है कथा में वर्णित घटना । कहानी में कथावस्तु संक्षिप्त होती है । कथा के विस्तार के लिए इसमें अवसर नहीं रहता । कथावस्तु का आरंभ घटना से किया जा सकता है और साधारण बात से भी । "पूस की रात" कहानी में घटना एक रात की है । इसी प्रकार "ठाकुर का कुआँ" में भी एक रात की ही घटना है ।

कहानी में किसी ऐसी अनावश्यक बात का वर्णन नहीं होना चाहिए जो मूल कथा से जुड़ी न हो । घटनाओं, स्थितियों और भावों का सांकेतिक रूप में वर्णन करना चाहिए । कल्पना की जगह जीवन के यथार्थ से जुड़ी घटना आज की कहानी में आदर्श समझी जाती है ।

कथावस्तु का विकास विवरण, वार्तालाप, अंतर्द्वंद्व, डायरी या पत्र शैली के द्वारा किया जा सकता है । राधिका रमण की कहानी "कानों में कंगना" का प्रारंभ वार्तालाप शैली में है, जबकि प्रसाद की "गुण्डा" कहानी का परिचयात्मक रूप में ।

चरित्र-चित्रण : कहानी में पात्रों की संख्या कम होती है । सामान्यतः कहानी में किसी एक प्रमुख पात्र के इर्द-गिर्द सारी घटना घूमती है । "पूस की रात" कहानी में मुख्य पात्र हल्कू है । हल्कू के चरित्र को ही इस कहानी के केंद्र में रखा गया है ।

उपन्यास में जहाँ चरित्र के विकास के लिए पर्याप्त अवसर रहता है, वहाँ कहानी में सांकेतिक रूप से चरित्र-विकास की आवश्यकता होती है । कहानी के मूल भाव को लेकर ही चरित्र-चित्रण किया जाता है । सफल कहानीकार अपने पात्रों का पूरा चरित्र संक्षेप में ही निर्मित करते हैं । आप अगले पाठ में "उसने कहा था" कहानी में इस विशेषता को देखेंगे । कहानी में आज ऐसे चरित्रों का चित्रण किया जाता है जो जीवन की वास्तविकता से जुड़े होते हैं । कल्पित पात्रों के कारण कहानी में अस्वाभाविकता का दोष आ जाता है । कहानीकार वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले अथवा मानव के अंतर्द्वंद्व को चित्रित करने वाले पात्रों को ले सकते हैं । प्रेमचंद ने कृषक वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में हल्कू का चित्रण किया है ।

कहानीकार चरित्र-चित्रण के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनाता है । कभी वह पात्रों के कार्यों अथवा विचारों से उनके चरित्र को उभारता है तो कभी पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप अथवा एक-दूसरे के बारे में व्यक्त विचारों के द्वारा भी चरित्र-चित्रण करता है । कभी-कभी लेखक स्वयं भी पात्रों के गुण-दोषों को बताता है । इनके अलावा चरित्र-चित्रण की कुछ और विधियाँ भी हो सकती हैं ।, यथा सांकेतिक चरित्र चित्रण ।

परिवेश : कहानी किसी स्थान और किसी समय से संबंधित होती है । इन्हें परिवेश कहते हैं । कहानी में उचित स्थान तथा काल का वर्णन सजीवता लाता है । यदि कहानी की घटनाएँ गाँव में घटित हुई हैं तो उसके स्थान पर शहर का चित्रण उचित नहीं होगा । गाँव से संबंधित सारी बातें उसमें आनी चाहिए । घर-आंगन, खेत-खलिहान, पशु, चौपाल, लोगों के रीति-रिवाज, रहन-सहन सभी परिवेश के अंतर्गत आते हैं । कहानी में लंबे-चौड़े विवरण का स्थान नहीं रहता, इसलिए कहानीकार थोड़े में कहानी के अनुकूल परिवेश का चित्रण करता है । परिवेश के स्वाभाविक चित्रण के लिए यह जरूरी है कि कहानीकार जिस स्थान एवं काल की घटना को ले, उसके बारे में उसे सही जानकारी हो । इसके अभाव में कहानी में अस्वाभाविकता आ जायेगी ।

संरचना शिल्प

शैली : कहानी लिखने का जो ढंग रचनाकार अपनाता है उसे शैली कहते हैं । प्रत्येक कहानीकार अपने ढंग से कहानी लिखता है, इसी कारण कहानी की शैली में विभिन्नता रहती है । विषयवस्तु एवं लेखक की अभिरुचि के अनुसार भी कहानी की शैली भिन्न हो सकती है । उदाहरण के लिए आप प्रेमचंद की कहानियों में शैली की विभिन्नता देख सकते हैं । कथानक के अनुसार कहानीकार डायरी शैली, आत्मकथात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली आदि का प्रयोग करता है । आप आगे की इकाई में 'उसने कहा था' कहानी पढ़ेंगे । इसमें पूर्वदीप्ति शैली है । व्यक्तिगत रुचि के अनुसार प्रेमचंद ने प्रायः बाह्य घटनाओं पर आधारित वर्णनात्मक कहानियों की रचना की है, जबकि जैनेन्द्र एवं 'अज्ञेय' ने मनोविश्लेषण को कहानी का आधार बनाया है ।

संवाद : कहानी के पात्र आपस में जो बातचीत करते हैं उन्हें संवाद कहते हैं । संवादों से कहानी आगे बढ़ती है । 'उसने कहा था' में कहीं-कहीं वार्तालाप ही कहानी को आगे बढ़ाते हैं । सफल कहानीकार पात्रों के अनुकूल संवादों का आयोजन करता है । यदि एक अनपढ़ पात्र शिक्षित की तरह बोलने लगे तो इसमें अस्वाभाविकता आ जाएगी । काल एवं स्थान के अनुसार पात्रों के संवादों में भी परिवर्तन होता है । यदि कहानी ऐतिहासिक है और स्थान राजस्थान है तो कहानी के पात्र उसी स्थान के अनुकूल वार्तालाप करेंगे । यदि कहानी लखनऊ से संबंधित है तो पात्रों के वार्तालाप में उर्दू के शब्दों का प्रयोग स्वभावतः होगा ।

भाषा : भाषा के द्वारा कहानीकार कहानी में सजीवता, स्वाभाविकता एवं रोचकता ला सकता है । इस के लिए यह आवश्यक है कि कहानीकार का भाषा पर पूर्ण अधिकार हो । कहानी में जहाँ लेखक अपना विचार रखता है – वहाँ उसकी अपनी भाषा होगी । लेकिन जब कोई बात पात्रों के द्वारा कहलवाई जाए, तब पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग आवश्यक है । कहानी की भाषा सरल सुबोध एवं बातचीत के रूप में होनी चाहिए । कठिन भाषा का प्रयोग कहानी समझने में बाधा उत्पन्न करता है ।

प्रतिपाद्यः कहानी के द्वारा लेखक जो संदेश देना चाहता है, उसे प्रतिपाद्य कहते हैं । सफल कहानी कथावस्तु, पात्र, परिवेश, शिल्प आदि तत्वों से निर्धारित नहीं होती, बल्कि उसकी सफलता गंभीर उद्देश्य पर निर्भर होती है । उदाहरण के लिए "शतरंज के खिलाड़ी" में प्रेमचंद का उद्देश्य यह दिखाना था कि तत्कालीन राज्य एवं समाज की अवस्था इतनी अवनत हो गयी थी कि बिना प्रतिरोध के अंग्रेजों ने "अवध" राज्य पर अधिकार कर लिया था ।

किसी कहानी को समझने के लिए यह जरूरी है कि आप के उसके प्रतिपाद्य को समझें । इसके लिए प्रथमतः कहानी को समझें, फिर उसमें निहित संदेश को पहचानें तथा उसके उपयोग पर विचार करें । उपन्यास एवं कहानी के तत्वों पर विचार करने पर हम दोनों में स्पष्ट अंतर पाते हैं:

उपन्यास	कहानी
1) उपन्यास का आकार बड़ा होता है ।	1) बड़ी से बड़ी कहानी भी छोटे से छोटे उपन्यास से छोटी होती है ।
2) उपन्यास में जीवन का व्यापक चित्रण रहता है ।	2) कहानी में जीवन के किसी एक अंश का चित्रण रहता है ।

3) उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक होती है ।	3) कहानी में पात्रों की संख्या कम होती है ।
4) उपन्यास में घटनाओं का बाहुल्य रहता है ।	4) कहानी में घटनाओं की संख्या सीमित होती है । सामान्यतः किसी एक घटना को लेकर कहानी लिखी जाती है ।
5) उपन्यास में विचार को विस्तार से रखा जाता है ।	5) कहानी में विचार को सांकेतिक रूप में रखा जाता है ।
6) उपन्यास में स्थान और काल की सीमा विस्तृत हो सकती है ।	6) कहानी में प्रायः एक स्थान और एक काल का चित्रण रहता है ।

विषय के अनुरूप कहानियों के निम्नलिखित भेद किये जा सकते हैं :

1) घटना प्रधान 2) वातावरण प्रधान 3) चरित्र प्रधान
4) ऐतिहासिक 5) सामाजिक 6) मनोवैज्ञानिक

1) **घटना प्रधान कहानियाँ** : वे कहानियाँ हैं जिनमें घटना मुख्य है — अर्थात् घटनाओं के माध्यम से कहानी आगे बढ़ती है । उदाहरण के लिए प्रेमचंद की "सारन्धा" घटना प्रधान कहानी है ।

2) **वातावरण प्रधान** : जब किसी कहानी को पढ़ने के बाद हमें ऐसा लगे कि जैसे पूरी कहानी में वातावरण ही हावी है, तब उसे वातावरण प्रधान कहानी कहते हैं । उदाहरण के तौर पर आप 'शतरंज के खिलाड़ी' को देख सकते हैं। यह वातावरण प्रधान कहानी है ।

3) **चरित्र प्रधान** : ऐसी कहानी जिसमें चरित्र का प्रभाव महत्वपूर्ण हो अर्थात् कहानी को पढ़ने के बाद आप महसूस करें कि लेखक ने पात्र के चरित्र को उभारने के लिए ही कहानी लिखी है, उसे चरित्र प्रधान कहानी कहते हैं। गुलेरी जी की 'उसने कहा था' में लहनासिंह के चरित्र को उभारा गया है । इसे चरित्र प्रधान कहानी कह सकते हैं ।

4) **ऐतिहासिक कहानी** : ऐसी कहानी जो इतिहास की घटनाओं से संबंधित हो, ऐतिहासिक कहानी कही जाती है । जैसे प्रेमचंद की "शतरंज के खिलाड़ी" तथा "राजा" ।

5) **सामाजिक कहानी** : जिन कहानियों में परिवार एवं समाज की समस्याओं को प्रमुखता दी जाती है, उन्हें हम सामाजिक कहानियाँ कह सकते हैं । उदाहरण के तौर पर प्रेमचंद की 'अलग्योझा' तथा 'ठाकुर का कुआँ' कहानियों को देख सकते हैं । ये सामाजिक कहानियाँ हैं ।

6) **मनोवैज्ञानिक कहानी** : जिन कहानियों में मानव मन को प्रमुखता दी गयी हो अर्थात् पात्रों के अंदर उठने वाले भावों-विचारों को व्यक्त किया गया हो, उन्हें मनोवैज्ञानिक कहानी के अंतर्गत रखा जा सकता है । उदाहरण के लिए यशपाल की "ज्ञान दान", "अभिशप्त" आदि ।

2.7 लघुकथा

गल्प साहित्य के अनेक रूप हिंदी में प्रचलित हैं, जिनमें से एक है लघुकथा । ऊपर से देखने पर "लघुकथा" "शार्ट स्टोरी" का अनुवाद प्रतीत होता है, पर हिंदी लघुकथा से वही ध्वनि नहीं निकलती जो अंग्रेजी "शार्ट स्टोरी" से निकलती है । अंग्रेजी में कहानियों को उपन्यास की तुलना में आकार की दृष्टि से लघु होने के कारण "शार्ट स्टोरी" कहा गया, पर हिंदी की "लघुकथा" कहानी से भी आकार में छोटी है ।

लघुकथा भारतीय साहित्य और उसकी परंपरा से जुड़ी है । इसके विकास में जातक कथाओं, बोध कथाओं, दृष्टांतों आदि का योगदान स्वीकार किया गया है । कुछ लघुकथाकारों ने बौद्ध कथाओं का उपयोग आधुनिक लघुकथा लेखन के लिए किया भी है ।

पर "लघुकथा" हिंदी-साहित्य की आधुनिक विधा है । लघुकथा की विशेषताओं को समझने के लिए उदाहरण-रूप में आप श्री अरविंद ओझा की 'अभिनय' शीर्षक निम्नलिखित लघुकथा को पढ़िए :

अभिनय

शहर के खुले मैदान में नेताजी आए हैं ।
भीड़-भीड़ लोग सुन रहे हैं उनका भाषण ·

- कि वर्तमान नीतियाँ खराब हैं ।
- कि हमें कुर्सी से मोह नहीं ।
- कि हम यह बदलेंगे, वह बदलेंगे ।
- कि हम यह मिटाएँगे, हम वह मिटाएँगे ।

दो बहरे पेड़ पर चढ़े हैं ।
एक ने बताया—"यह पहले से अच्छा अभिनय करता है ।"
दूसरे ने हाँ में गरदन हिलाई । फिर अपार भीड़ की तरफ आँख फैलाकर समझाया—"तभी तो भीड़ ज्यादा है ।"

(हस्ताक्षर, संपादिका—शमीम शर्मा, पृ० 66–67)

इस लघुकथा को पढ़कर आप समझ सकते हैं कि लघुकथा आकार में लघु अर्थात् संक्षिप्त होती है । यह लघुता लघुकथा की एक प्रमुख विशेषता है । इस लघुकथा में न कोई भारी-भरकम घटना है, न विस्तृत विवरण (ब्यौरे) और न प्रत्यक्ष रूप से कोई उपदेश; फिर भी इसमें नेताओं पर करारा व्यंग्य है । इससे स्पष्ट है कि लघुकथा में घटनाविहीनता और विवरणविहीनता के गुण होते हैं । लघुकथाकार की दृष्टि अपने उद्देश्य पर टिकी होती है और वह तीव्र गति से अंत की ओर बढ़ता है । वह सीधे-सीधे उपदेश तो नहीं देता पर व्यंग्य का सहारा लेकर एक दूसरे ढंग से अपनी बात को कह सकता है । जैसे इस लघुकथा में प्रकारांत से लघुकथाकार ने यह बता दिया है कि नेताओं की कथनी और करनी में अंतर होता है—वे केवल अभिनय (दिखावा) करते हैं और जो जितना अच्छा अभिनय करता है वह उतनी ही ज्यादा भीड़ जुटा लेता है, उतना ही लोकप्रिय हो जाता है । लेखक ने पाठकों को ऐसे नेताओं से सावधान रहने की नेक सलाह भी दे दी है । जब लेखक किसी और बहाने से किसी और को उपदेश देता है तो इसे अन्योक्तिपरकता कहते हैं । यहाँ दो बहरे व्यक्तियों के माध्यम से लघुकथाकार ने यही किया है । बहरा व्यक्ति दूसरे की बात नहीं सुन सकता । बात न सुनने के प्रतीक रूप में लेखक ने दो बहरे व्यक्तियों को रखा है । उन्हें रखकर मानो उनके बहाने से लेखक ने पाठकों को यह उपदेश दे दिया है कि नेताओं की बात मत सुनो---उनके कहे का विश्वास मत करो । इस प्रकार इस लघुकथा की विशेषताओं के जरिए हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि लघुता, घटनाविहीनता, विवरणविहीनता, प्रतीकात्मकता, व्यंग्य और अन्योक्तिपरकता लघुकथा की विशेषताएँ हैं ।

विद्वानों के बीच "लघुकथा" को लेकर मतभेद है कि यह कहानी का ही एक रूप है या स्वतंत्र विधा है । एक बात आपके सामने स्पष्ट हो जानी चाहिए कि जिस प्रकार कहानी उपन्यास का संक्षिप्त रूप नहीं है, उसी प्रकार "लघुकथा" कहानी का संक्षिप्त रूप नहीं है । यह एक नयी विधा के रूप में उभर रही है ।

लघुकथाओं एवं लघुकथा से जुड़े समीक्षकों ने वास्तविक लघुकथा का आरंभ बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक से माना है, किंतु कुछ समीक्षकों ने प्रेमचंद, सुदर्शन, रामनारायण उपाध्याय, विष्णु प्रभाकर, श्यामसुन्दर व्यास आदि की पूर्व प्रकाशित लघुकथाओं में समकालीन लघुकथा के पूर्व रूप खोजे हैं । लघुकथा के विकास में वर्तमान युग की यांत्रिकता और व्यस्तता का जो योगदान है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता । इस बढ़ती व्यस्तता के ही कारण आठवें दशक से लघुकथा का तीव्र गति से विकास हुआ है ।

लघुकथा के विकास में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रावी, सतीश दुबे, जगदीश कश्यप, विक्रम सोनी, रमेश बतरा, मधु दीप, शंकर पुणतांबेकर, अशोक भाटिया, कमल चोपड़ा, अशोक लव, मुकेश कुमार जैन "पारस", सोमेश पुरी आदि का विशेष योगदान है ।

बोध प्रश्न

6 तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों में क्या अंतर है ? पाँच वाक्यों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

7 उपन्यास और कहानी में एक अंतर यह है कि उपन्यास की पृष्ठभूमि बड़ी होती है और कहानी की छोटी । आप तीन अन्य अंतर बताइए ।

.....

.....

.....

8 चरित्र-चित्रण के लिए कहानीकार अनेक विधियाँ अपनाता है । आप किन्हीं तीन विधियों का उल्लेख कीजिए ।

.....

.....

.....

9 लघुकथा की एक विशेषता है प्रतीकात्मकता । आप तीन अन्य विशेषताएँ बताइए ।

.....

.....

.....

2.8 निबंध

'निबंध' संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'संवार कर सीना' । प्राचीन काल में हस्तलिखित ग्रंथों को संवार कर सिया जाता था और इस प्रक्रिया को निबंध कहते थे । धीरे-धीरे इस शब्द का प्रयोग ग्रंथ के लिए होने लगा---वह ग्रंथ जिसमें विचारों को बांधा जाता था, निबंध कहलाने लगा । किंतु हिंदी में निबंध शब्द का अलग ही अर्थ है ।

आज 'निबंध' अंग्रेजी के 'एस्से' शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होता है । इस प्रकार निबंध में नये अर्थ जुड़े हैं और अनावश्यक अर्थों का त्याग हुआ है । फ्रांसिस बेकन ने 'एस्से' को 'डिस्पर्स्ड मैडिटेशन' अर्थात् बिखरे विचार माना है । इस धारणा के अनुसार साहित्यकार के मन में उठने वाले विचारों का लिखित रूप 'एस्से' है ।

हिंदी में निबंध शब्द का प्रयोग गद्य की उस विधा के लिए होता है जिसमें विचारों को क्रमबद्ध रूप में रखा जाता है । कविता की अपेक्षा गद्य लिखना कठिन है और गद्य की अपेक्षा निबंध लिखना । इसका कारण यह है कि निबंध में विचारों को एक सुनिश्चित क्रम में ठूंस-ठूंस कर रखा जाता है । निबंध के लेखन के लिए अध्ययन और विषय का ज्ञान आवश्यक है । इन्हीं कारणों से हिंदी के प्रसिद्ध निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबंध को 'गद्य की कसौटी' माना है ।

निबंध एक सीमित आकार वाली रचना है । इसमें विषय का प्रतिपादन निजीपन के साथ किया जाता है । विषय का विकास इस प्रकार से किया जाता है कि उसमें कोई बिखराव न हो । दूसरे शब्दों में विषय के प्रतिपादन में आवश्यक संगति तथा संबद्धता की आवश्यकता होती है । इसमें विवेचन की स्पष्टता के साथ भाषा की स्वच्छता तथा सजीवता की भी आवश्यकता होती है । निबंध की इन विशेषताओं को ध्यान में रखकर बाबू गुलाब राय ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है—'निबंध सीमित आकार वाली वह रचना है जिसमें विषय का प्रतिपादन, निजीपन, स्वच्छता, पौष्ठव, सजीवता एवं आवश्यक संगति तथा संबद्धता के साथ किया जाता है ।' इन विशेषताओं के अतिरिक्त निबंध में बुद्धि और हृदय के योग को भी आवश्यक माना गया है । इसका अर्थ यह है कि निबंध लेखन में केवल विचारों की ठूंस-ठांस ही नहीं होती, लेखक उसे सरस, सजीव, और रोचक बनाने के लिए उसमें अपने हृदय को भी उडेंलता है । इसके लिए कभी तो वह अपने जीवन की घटनाओं का उल्लेख करता है और कभी कुछ अन्य रोचक उदाहरणों का उपयोग कर लेता है । संक्षेप में यह कह सकते हैं कि निबंध लेखन के पीछे लेखक छिपा रहता है । उसका व्यक्तित्व निबंध में कहीं-न-कहीं झलक जाता है और यदि ऐसा नहीं हो पाता तो निबंध अपना सौंदर्य खो बैठता है ।

निबंध के तत्व

निबंध के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :
i) लेखक का व्यक्तित्व
ii) वैचारिक और भावात्मक आधार
iii) भाषा-शैली

संक्षेप में उपरिलिखित तत्वों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है—

i) **लेखक का व्यक्तित्व** : जब कोई लेखक किसी विषय पर निबंध लिखता है तो उस निबंध में उसका व्यक्तित्व भी आ जाता है । उदाहरण के लिए हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल या आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों को देख सकते हैं । इन निबंधकारों के निबंधों में इनका व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है । इन्होंने जब किसी विषय वस्तु या विचार पर निबंध लिखे तो उनमें इनके व्यक्तित्व की छाप अवश्य पड़ी ।

ii) **वैचारिक और भावात्मक आधार** : निबंध की रचना हवा में नहीं की जा सकती । निबंधकार निबंध में या तो किसी विचार की अभिव्यक्ति करता है या किसी भावना का चित्रण करता है । उदाहरण के लिए आप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों को लें । 'चिन्तामणि' शीर्षक निबंध संग्रह में संकलित 'कविता क्या है', 'तुलसी का भक्ति मार्ग' आदि उनके विचारात्मक निबंध हैं । इसी प्रकार सरदार पूर्ण सिंह के 'मजदूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता' आदि भावात्मक निबंध हैं ।

iii) **भाषा-शैली** : गद्य की अन्य विधाओं के समान निबंध में भी भाषा-शैली का महत्वपूर्ण स्थान है । निबंध की भाषा विषय के अनुरूप होनी चाहिए । सामान्यतया निबंधकार विषय वस्तु के अनुरूप भाषा का चयन करता है । निबंध की भाषा संस्कृतनिष्ठ, उर्दूनिष्ठ तथा बोल-चाल के निकट हो सकती है । जब निबंधकार संस्कृत के शब्दों का अधिक प्रयोग करता है तो उसे संस्कृतनिष्ठ भाषा कहा जाता है । इसी प्रकार उर्दूनिष्ठ भाषा से तात्पर्य है अरबी, फ़ारसी तथा उर्दू के शब्दों की अधिकता । कई बार यह भी देखने में आया है कि निबंधकार इन तीनों का मिश्रण करके निबंध लेखन करता है ।

शैली : वाक्य रचना की दृष्टि से निबंध की 2 प्रमुख शैलियाँ हैं :
(1) व्यास शैली और (2) समास शैली

व्यास शैली में लेखक विस्तारपूर्वक अपनी बात को समझाता है । इसमें लंबे-लंबे वाक्यों का प्रयोग किया जाता है । निबंधकार उदाहरणों के द्वारा विषय को स्पष्ट करता है । विषय को विस्तारपूर्वक समझना इस शैली की प्रमुख विशेषता है ।

समास शैली में लेखक छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा विषय को सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है । इसमें विचारों को ठूंस-ठूंस कर छोटे से वाक्य में भर दिया जाता है तथा इस सूत्र वाक्य को समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है । पाठक को इस शैली के वाक्यों को पढ़ कर कुछ देर के लिए रुकना पड़ता है—इस प्रकार के सूत्र वाक्यों की व्याख्या की आवश्यकता होती है और इन्हें समझे बिना आगे बढ़ पाना पाठक के लिए कठिन हो जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध 'क्रोध' से एक उदाहरण देखिए—'वैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है ।' यह समास शैली का उदाहरण है । इसकी व्याख्या समझे बिना पाठक आगे नहीं बढ़ पाता । सामान्यतः निबंध लेखक अपने निबंधों में इन दोनों शैलियों (व्यास शैली और समास शैली) का प्रयोग करते हैं ।

निबंधों के प्रमुख भेद

मुख्य रूप से निबंधों के निम्नलिखित प्रमुख भेद माने गए हैं :

i) **वर्णनात्मक निबंध** : इनमें किसी स्थान या वस्तु का वर्णन होता है ।

ii) **विवरणात्मक निबंध** : जिन निबंधों में किसी घटना या चरित्र का विवरण दिया जाता है उन्हें विवरणात्मक निबंध कहते हैं । घटनाएँ निम्नलिखित प्रकार की हो सकती हैं :

क) ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओं पर आधारित घटनाएँ,
ख) सच्ची या कल्पित कहानियों पर आधारित घटनाएँ,
ग) राजनीति, समाज या साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवन पर आधारित घटनाएँ ।

iii) **विचारात्मक निबंध** : जिन निबंधों में विचारों की प्रधानता होती है उन्हें विचारात्मक निबंध कहते हैं । इस प्रकार के निबंधों में निबंधकार विषय के प्रत्येक पहलू का सोच-समझकर विवेचन करता है । निश्चय ही, इस कोटि के निबंधों में मस्तिष्क का अधिक योग रहता है तथा चिन्तन की प्रधानता होती है । सैद्धान्तिक विषय का विवेचन इस प्रकार के निबंधों की सीमा में आता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'कविता क्या है' शीर्षक निबंध इसका अच्छा उदाहरण है ।

उपरिलिखित वर्गों के अतिरिक्त निबंध के कुछ और प्रकार भी माने गए हैं जैसे मनोवैज्ञानिक निबंध । इस प्रकार के निबंधों में मानव के मनोभावों का विश्लेषण किया जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'उत्साह', 'क्रोध' आदि निबंध इसी प्रकार के हैं । मनोभावों का यह विवेचन विचारात्मक होता है, इसलिए कुछ विद्वान इन निबंधों को मनोवैज्ञानिक न कहकर विचारात्मक भी कह देते हैं ।

उपरिलिखित वर्गीकरण के स्थान पर कुछ आलोचक निबंध के निम्नलिखित दो मुख्य प्रकार मानने के पक्ष में हैं:

i) **विषयप्रधान निबंध** : इस कोटि के निबंधों में निबंधकार की दृष्टि विषय पर केन्द्रित रहती है । वह विषय का इस प्रकार विवेचन करता है कि उसके विभिन्न पहलू पाठक के सामने स्पष्ट हो जाते हैं ।

ii) **विषयिप्रधान निबंध** : इन निबंधों में लेखक का व्यक्तित्व पूरी तरह छाया रहता है । वह विषय का विवेचन भावना के धरातल पर करता है और उसमें पूरी तरह डूब जाता है । इस प्रकार के निबंधों को ललित निबंध भी कह दिया जाता है ।

हिंदी निबंध-साहित्य के विकास में पं० बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, विद्या निवास मिश्र, कुबेरनाथ राय आदि का महत्वपूर्ण योगदान है ।

☛ **बोध प्रश्न**

10 निबंध में विचारों को .....रूप में रखा जाता है ।

11 निम्नलिखित कथनों में से कुछ सही हैं, कुछ गलत । आप सही कथन के आगे (√) और गलत कथन के आगे (x) का चिह्न लगाइए ।

i) निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की छाप रहती है । ☐
ii) निबंध में वैचारिक और भावात्मक आधारों का सुन्दर समन्वय होता है । ☐
iii) निबंध का संबंध राजनीतिक विषय से नहीं हो सकता । ☐
iv) निबंध केवल वर्णनात्मक होते हैं । ☐

12 निबंध को 'डिस्पर्स्ड मैडिटेशन' कहने वाले विद्वान का नाम है (सही नाम के आगे (√) का चिह्न लगाएँ) :

i) मैथ्यू आर्नल्ड ☐
ii) जेम्स जॉयस ☐
iii) फ्रांसिस बेकन ☐
iv) शेक्सपियर ☐

13 नीचे लिखे तत्वों में से आप निबंध के तत्वों को छाँटिए :

i) चरित्र चित्रण
ii) लेखक का व्यक्तित्व
iii) चित्रात्मकता
iv) वैचारिक और भावात्मक आधार ।

2.9 आलोचना

इकाई 1 'हिंदी गद्य का विकास' में आप 'आलोचना' या 'समालोचना' के विषय में कुछ पढ़ चुके हैं । आप जानते हैं कि किसी रचना की सम्यक् व्याख्या और उसका ठीक-ठीक मूल्यांकन ही 'समालोचना' है । इसे हम 'समीक्षा' भी कहते हैं ।

समालोचना में समालोचक किसी रचनाकार की रचना की परीक्षा करता है दूसरे शब्दों में वह रचना के गुण-दोषों को निष्पक्ष रूप में प्रकट कर उसके विषय में अपना मत भी प्रस्तुत करता है । सहानुभूतिपूर्वक रचना के मर्म को उद्घाटित करना समीक्षक का पहला कर्त्तव्य है । अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं और राग-द्वेष से ऊपर उठकर उसे यह काम पूरी ईमानदारी के साथ करना होता है । आलोचक के इस गुण को हम उसकी 'तटस्थता' कह सकते हैं । यह तटस्थता आलोचना की प्राणशक्ति है । आलोचना के आलोचना बने रहने के लिए निष्पक्ष और तटस्थ मूल्यांकन आवश्यक है ।

किसी रचना की समीक्षा करते समय समीक्षक को उस रचना के विषय में अपना स्पष्ट मत प्रस्तुत करना होता है । दूसरे शब्दों में उसे रचना के विषय में स्पष्ट निर्णय देना होता है । जिस समीक्षक का निर्णय जितना निर्भ्रान्त और निष्पक्ष होगा, उसकी समीक्षा उतनी ही उत्तम बन पड़ेगी ।

आलोचना के स्वरूप को जान लेने के बाद अच्छे समालोचक के गुणों को जान लेना ज़रूरी है, क्योंकि जिस समीक्षक में ये गुण जितनी मात्रा में होंगे उसकी समीक्षा उतनी ही सशक्त बन सकेगी ।

समालोचक के गुण

अच्छे समालोचक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए :

विद्वत्ता : किसी भी साहित्यिक मुद्दे या रचना की सही-सही आलोचना के लिये यह आवश्यक है कि आलोचक विद्वान हो । विद्वान लेखक ही विषयवस्तु को भलीभांति समझ सकता है । अपनी बुद्धि और ज्ञान के द्वारा वह सही और गलत की पहचान कर सकता है ।

निष्पक्षता : आलोचक का साहित्यिक मुद्दे या रचना का मूल्यांकन करते समय निष्पक्ष रहना आवश्यक है । अगर वह पक्षपातपूर्ण नीति का पालन करेगा तो संतुलित और निष्पक्ष मूल्यांकन न कर सकेगा । उसे बिना पक्षपात के सही और गलत या गुण-अवगुण की परख करनी चाहिए ।

तर्कपूर्ण संगति : सफल आलोचक वही हो सकता है जिसमें तर्क करने की शक्ति हो । रचना क्यों अच्छी है या क्यों बुरी है, रचना में कौन-कौन से गुण हैं और क्या-क्या कमियाँ हैं.इसे आलोचक को तर्कों द्वारा सिद्ध करना होगा । दूसरे शब्दों में आलोचक तर्क द्वारा ही अपने मत को सिद्ध कर सकता है ।

विवेचन-विश्लेषण : समालोचक में विवेचन की क्षमता होनी चाहिए । निष्पक्ष भाव से विवेचन-विश्लेषण द्वारा मूल्यांकन करना ही सच्चे आलोचक का गुण है । आलोचक का यही गुण आलोचना को गंभीर बनाता है ।

आलोचना के प्रकार

यों तो आलोचना के अनेक प्रकार हैं, किंतु मोटे तौर पर इसे निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

i) **सैद्धांतिक आलोचना ।**
ii) **व्यावहारिक आलोचना ।**

सैद्धांतिक आलोचना में उन सिद्धांतों की चर्चा की जाती है जिनके आधार पर किसी रचना की समीक्षा की जा सकती है । रस, अलंकार आदि ऐसे ही सिद्धांत हैं । इस प्रकार के सिद्धांतों को समीक्षा का आधार माना जाता है । समीक्षा के इन आधारभूत सिद्धांतों के विषय में दी जाने वाली जानकारी सैद्धांतिक समीक्षा के अंतर्गत आती है । आधुनिक दृष्टि से समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के आधार पर किया जाने वाला सैद्धांतिक विवेचन भी इसी प्रकार का है ।

जब समीक्षा के आधारभूत सिद्धांतों के आधार पर किसी कृति की समीक्षा की जाती है तो वह आलोचना का व्यावहारिक रूप होता है । दूसरे शब्दों में इसे व्यावहारिक समीक्षा कहते हैं । उदाहरण के लिए सूरदास के काव्य का रस, मनोविज्ञान अथवा समाजशास्त्र की दृष्टि से किया जाने वाला विश्लेषण व्यावहारिक समीक्षा के अन्तर्गत आएगा ।

हिंदी समीक्षा के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० नगेन्द्र, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० रामविलास शर्मा आदि का उल्लेखनीय योगदान है ।

14 दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द के प्रयोग द्वारा निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

i) समालोचना में समालोचक किसी रचनाकार की रचना का ..... करता है ।
(प्रकाशन, मूल्यांकन, संयोजन)

ii) आलोचक ..... रचना के मर्म को उद्घाटित करता है ।
(सहृदयतापूर्वक, व्यक्तिनिष्ठ भाव से)

iii) आलोचना के आलोचना बने रहने के लिए निष्पक्ष और ..... मूल्यांकन आवश्यक है ।
(सापेक्ष, प्रभावपूर्ण, तटस्थ)

15 अच्छे आलोचक का एक गुण है विद्वता । आप उसके तीन अन्य गुणों का उल्लेख कीजिए :

.....

.....

.....

16 आलोचना के प्रमुख दो प्रकारों का उल्लेख कीजिए ।

.....

.....

2.10 रेखाचित्र और संस्मरण

रेखाचित्र और संस्मरण हिंदी-साहित्य की नवीन विधाएँ हैं । जब किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, घटना, दृश्य आदि का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि पाठक के मन पर उसका हू-ब-हू चित्र बन जाता है तो उसे रेखाचित्र कहते हैं । इस प्रकार के वर्णन में व्यक्ति को बेलाग अर्थात् तटस्थ होना पड़ता है । इसके विपरीत जब लेखक अपने या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन में बीती किसी घटना अथवा दृश्य का स्मरण कर उसका वर्णन करता है तो उसे संस्मरण कहते हैं । रेखाचित्र में वर्णन का हू-ब-हू होना आवश्यक है और संस्मरण में उसका स्मृति के आधार पर लिखा जाना । एक अन्य बात यह भी है कि रेखाचित्र में लेखक का वर्णित घटना, व्यक्ति आदि के साथ निजी संबध होना आवश्यक नहीं है, जबकि संस्मरण के लिए यह आवश्यक है । संस्मरण लिखने के लिए यह जरूरी है कि लेखक का वर्णित व्यक्ति, घटना आदि के साथ व्यक्तिगत संबध रहा हो ।

रेखाचित्र अतीत का भी हो सकता है, वर्तमान का भी और यदि लेखक के मन में भविष्य का कोई चित्र है तो उसका भी हो सकता है । संस्मरण अतीत का ही हो सकता है, वर्तमान या भविष्य का नहीं ।

संस्मरण में लेखक उन्हीं तथ्यों का वर्णन करता है जो वास्तव में घटित हो चुके हैं । उसे अपनी कल्पना से कुछ भी जोड़ने की छूट नहीं है । रेखाचित्र में इस प्रकार का कोई बंधन नहीं है ।

रेखाचित्र में लेखक के निजी व्यक्तित्व का कोई महत्व नहीं होता । संस्मरण में लेखक के निजी विचार किसी-न-किसी प्रकार आ ही जाते हैं, क्योंकि उसका संबंध उसके अपने जीवन से होता है ।

विस्तार संस्मरण की विशेषता है । प्रसंगों को याद करते समय लेखक उन्हें रुचिकर बनाकर प्रस्तुत करता है और कहानी कहने के लहजे का उपयोग करता है । इससे वर्णन में फैलाव आता है । कम से कम शब्दों का उपयोग कर बात रखने की कला का इसमें महत्व है । अनावश्यक विस्तार रेखाचित्र को भोंडा बना देता है ।

रेखाचित्र में वर्णन इतना सुगठित और प्रभावपूर्ण होना चाहिए कि उसका चित्र पाठक के सामने उपस्थित हो जाए । ऐसा लगे कि किसी चित्रकार का बनाया हुआ चित्र आँखों के सामने है। शब्दों के द्वारा चित्र अंकित करने के इस गुण को चित्रात्मकता कहते हैं । यह रेखाचित्र की एक बहुत बड़ी विशेषता है । वास्तव में रेखाचित्रकार का काम शब्दों के द्वारा चित्रों की श्रृंखला प्रस्तुत करने का है । रेखाचित्र इन शब्द-चित्रों को किसी विशेष क्रम में उपस्थित करता है । क्रम के इस निर्वाह को

श्रृंखलाबद्धता कहते हैं । संस्मरण में भी सटीक और प्रभावपूर्ण वर्णन तथा श्रृंखलाबद्धता आवश्यक है । अपने इस बिंदु पर रेखाचित्र और संस्मरण एक दूसरे के नज़दीक हैं ।

संस्मरण कभी जीवनी के निकट चला आता है, कभी आत्मकथा के । यदि लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं को याद करता है तो वह 'आत्मकथा' के निकट आ जाता है और यदि अन्य व्यक्ति के साथ घटी घटनाओं को याद करता है तो वह 'जीवनी' के निकट पहुँच जाता है । मुख्य बात यह है कि इसमें लेखक या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन का कोई पक्ष सामने अवश्य आता है । इसके साथ, सबसे बड़ी बात यह है कि वह वर्णन इस प्रकार करता है, मानों बीती घटनाओं को याद कर रहा हो ।

हिंदी में महादेवी वर्मा के रेखाचित्र अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी अमर हैं । इनके अतिरिक्त बनारसीदास चतुर्वेदी का सेतुबंध, श्रीराम शर्मा का 'प्राणों का सौदा', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'माटी की मूरतें' तथा 'मील का पत्थर' उल्लेखनीय रेखाचित्र हैं । महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों को लेकर विद्वानों के बीच कुछ मतभेद है । कुछ विद्वान् इन्हें संस्मरण कहने के पक्ष में हैं । उनका तर्क है कि महादेवी वर्मा ने जिन पात्रों और घटनाओं को लिया है, वे उनके जीवन में आये हुए वास्तविक पात्र और घटनाएँ हैं । लेकिन हमारे पास इस बात का कोई ठोस प्रमाण नहीं है कि ये पात्र लेखिका के जीवन में आये थे या नहीं ? इसके अतिरिक्त महादेवी वर्मा ने जिस तटस्थता के साथ, संक्षिप्त रूप में, पात्रों और घटनाओं का चित्रात्मक अंकन किया है, वह उनकी रचनाओं को रेखाचित्र के समीप लाता है । वस्तुतः महादेवी के रेखाचित्रों में 'स्मृतिचित्र' तथा संस्मरण दोनों समाहित हो जाते हैं । महादेवी ने संस्मरणात्मक शैली में ही रेखाचित्र अधिक लिखें हैं जिनको बहुत से आलोचक भ्रमवश संस्मरण मान लेते हैं ।

हिन्दी में राहुल सांकृत्यायन की 'बचपन की स्मृतियाँ,' प्रकाशचन्द्र गुप्त की 'पुरानी स्मृतियाँ,' विनयमोहन शर्मा का 'रेखा और रंग', कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का 'जिन्दगी मुस्कराई', शान्तिप्रिय द्विवेदी की 'स्मृतियाँ और कृतियाँ,' विष्णु प्रभाकर का 'कुछ शब्द : कुछ रेखाएँ' उल्लेखनीय संस्मरण हैं।

बोध प्रश्न

17 उपयुक्त शब्द के प्रयोग द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) जब किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, घटना, दृश्य आदि का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि पाठक के मन पर उसका हू-ब-हू बन जाता है तो उसे रेखाचित्र कहते हैं ।

ii) संस्मरण ..... का ही हो सकता है, वर्तमान या भविष्य का नहीं ।

18 रेखाचित्र और संस्मरण में एक अंतर यह है कि रेखाचित्र में वर्णन का हू-ब-हू होना आवश्यक है जबकि संस्मरण में उसका स्मृति के आधार पर लिखा जाना । आप इसी प्रकार रेखाचित्र और संस्मरण में किन्हीं तीन अन्य अन्तरों का उल्लेख कीजिए ।

i) .....

.....

ii) .....

.....

iii) .....

.....

2.11 आत्मकथा और जीवनी

आत्मकथा और जीवनी एक-दूसरे से मिलती-जुलती विधाएँ हैं, फिर भी इन दोनों में भेद है । इनमें मुख्य अंतर यह है कि जहाँ आत्मकथा का लेखक अपने जीवन के बारे में खुद लिखता है, वहाँ जीवनी-लेखक किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में लिखता है । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि किसी

व्यक्ति द्वारा स्वयं लिखी गयी अपनी जीवनी आत्मकथा है । इसके विपरीत, जब कोई लेखक किसी अन्य व्यक्ति के जीवन को महत्वपूर्ण घटनाओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है तो उसे जीवनी कहते हैं । आत्मकथा का नायक लेखक स्वयं होता है जबकि जीवनी का नायक लेखक स्वयं नहीं, कोई अन्य व्यक्ति होता है ।

आत्मकथा में लेखक अपने बीते हुए जीवन पर दृष्टि डालता है अपने अतीत का विश्लेषण करता है, इसलिए उसे बाहरी सामग्री की तलाश नहीं करनी पड़ती, जबकि जीवनी-लेखक के लिए इसकी आवश्यकता रहती है । जीवनी-लेखक जिसकी जीवनी लिखे, यदि उससे उसका निकट का संपर्क हो तो यह अच्छी बात है । यदि चरित-नायक से लेखक का निकट का संपर्क न हो तो वह अपने चरित-नायक के जीवन की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करे । इसके लिए वह निम्नलिखित स्रोतों का उपयोग कर सकता है :

i) उस विषय या उससे संबंधित विषयों पर लिखित पुस्तकों या लेखों का,
ii) मूल सामग्री जैसे चरित-नायक द्वारा लिखित डायरी, पत्रों आदि का,
iii) चरित नायक के समकालीनों के संस्मरणों का,
iv) संबंधित स्थानों के भ्रमण से प्राप्त तथ्यों का,
v) किसी अन्य स्रोत से प्राप्त जानकारी का ।

आत्मकथा और जीवनी में कुछ समानताएँ भी हैं । आइए संक्षेप में उनकी जानकारी भी प्राप्त कर लें । आत्मकथा और जीवनी लिखने के लिए यह जरूरी नहीं कि व्यक्ति के जीवन की सभी घटनाएँ ली जाएँ, किंतु इनमें हृदय को छूने वाली अथवा जीवन में मोड़ लाने वाली घटनाओं का समावेश आवश्यक है । इनमें चरित-नायक के जीवन की प्रामाणिक और तथ्यपरक जानकारी की अपेक्षा रहती है, इसलिए कल्पना और कृत्रिमता के लिए इनमें कोई स्थान नहीं होता । साहित्य के अन्य रूपों के समान, आत्मकथा और जीवनी की शैली भी प्रभावपूर्ण होनी चाहिए । जीवन में घटित घटनाओं के क्रम का भी इन विधाओं में ध्यान रखना होता है । दूसरे शब्दों में घटनाएँ उसी क्रम में लिखी जानी चाहिए, जिस क्रम में वे घटी हों । आत्मकथा और जीवनी यदि प्रभावपूर्ण शैली में लिखी गयी हों तो वे उपन्यास की भाँति रोचक हो सकती हैं ।

जैन कवि बनारसी दास लिखित 'अर्धकथानक' हिंदी की पहली आत्मकथा है । आधुनिक युग में इस विधा की शुरूआत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कुछ आप बीती, कुछ जगबीती' से की । अम्बिकादत्त व्यास की 'मित्र' 'वृत्तांत', बाबू श्यामसुन्दर दास की 'मेरी आत्मकहानी' राजेन्द्र बाबू की 'आत्मकथा' हरिवंश राय 'बच्चन' की 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड का निर्माण फिर', 'प्रवास की डायरी', भवानी दयाल संन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा', राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा', डॉ॰ नगेन्द्र की 'अर्धकथा', आदि हिंदी की उल्लेखनीय आत्मकथाएँ हैं ।

जीवनी-साहित्य की महत्वपूर्ण उल्लेखनीय कृतियाँ हैं. प्रेमचन्द्र : घर में (शिवरानी देवी), महाप्राण निराला (गंगा प्रसाद पाण्डेय), कलम का सिपाही (अमृत राय) प्रियदर्शिनी इंदिरा गाँधी (शिव कुमार कौशिक) , आवारा मसीहा (विष्णु प्रभाकर), प्रेमचंद : चित्रात्मक जीवनी (कमलकिशोर गोयनका) आदि । इनके अतिरिक्त इनके पूर्व लिखी गयी रामनरेश त्रिपाठी की 'गाँधी जी कौन', व्यथित हृदय की 'पं॰ जवाहरलाल नेहरू', गणेश शंकर विद्यार्थी की 'लाला लाजपतराय', इन्द्र विद्यावाचस्पति की 'चन्द्रशेखर आज़ाद' आदि भी इसी कोटि की जीवनियाँ हैं ।

2.12 यात्रावृत्त

जब लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों का वर्णन करता है तो उसे यात्रावृत्त या यात्रा-साहित्य कहते हैं । लेखक वर्ण्य-विषय का वर्णन आत्मीयता तथा निजता के साथ करता है.जिस विषय का वह वर्णन करता है उसके साथ उसका जुडाव होता है तथा उसके अपने जीवन-संदर्भ भी उसमें आते हैं । आत्मीयता तथा निजता का यह गुण निबंध-शैली की भी विशेषता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि यात्रावृत्त की वर्णन-प्रक्रिया निबंध की सी होती है । फिर भी यात्रावृत्त निबंध नहीं है, क्योंकि इसमें जिस किसी विषय का समावेश नहीं हो सकता.इसमें तो यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों का वर्णन ही अपेक्षित है ।

यात्रावृत्त के लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों का वर्णन प्रायः स्मृति के आधार पर करते हैं, इसलिए किसी अच्छे यात्रावृत्त में संस्मरण की प्रवृत्ति भी रहती है । फिर भी यात्रावृत्त और संस्मरण एक-दूसरे से भिन्न हैं। यात्रावृत्त में समय तथा स्थान का उल्लेख अनिवार्य रूप से होता है, किंतु संस्मरण में स्थान तथा समय का उल्लेख अनिवार्य नहीं है । इसके अतिरिक्त यात्रावृत्त में यात्रा

के दौरान देखे गये स्थानों, दृश्यों अथवा घटनाओं से जुड़ी सामयिक स्मृतियों का वर्णन होता है, जबकि संस्मरण में स्थायी एवं अमिट स्मृतियों का वर्णन किया जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्णन की दृष्टि से यात्रावृत्त निबंध और संस्मरण दोनों के कुछ गुणों को लेकर चलता है, फिर भी वह उन दोनों से अलग है ।

यात्रावृत्त का लेखक यात्रा के विवरणों में स्थान, दृश्य, घटना तथा व्यक्ति आदि से सम्बंधित कटु एवं मधुर स्मृतियों का चित्रण कर सकता है ।

हिन्दी में यात्रावृत्त विधा को समृद्ध करने वालों में 'अज्ञेय' (अरे यायावर रहेगा याद), मोहन राकेश (आखिरी चट्टान तक), भगवतशरण उपाध्याय (वो दुनिया) आदि मुख्य हैं ।

2.13 रिपोतार्ज़

'रिपोतार्ज़' फ्रेंच भाषा का शब्द है तथा अंग्रेजी के 'रिपोर्ट' शब्द से इसका घनिष्ठ संबंध है । किसी घटना के यथातथ्य विवरण को 'रिपोर्ट' कहते हैं जो प्रायः समाचारपत्रों के लिए लिखी जाती है । रिपोर्ट के साहित्यिक और कलात्मक रूप को हम 'रिपोतार्ज' कह सकते हैं ।

'रिपोतार्ज़' का लेखक रिपोतार्ज़ में युद्ध, महामारी, अकाल, बाढ़ आदि के दुष्परिणामों का आँखों-देखा समाचार वर्णित करता है पर उसका उद्देश्य सूचना देना-भर नहीं होता । इसके पीछे उसकी एक विशेष दृष्टि होती है । लेखक का मुख्य उद्देश्य महामारी, बाढ़, अकाल आदि से उत्पन्न विषम स्थितियों से लाभ उठाने वाले मुनाफाखोरों पर व्यंग्य करना होता है । वह ऐसे नीच व्यक्तियों पर व्यंग्य कर मानव जीवन के विकास में सहायक जीवन-मूल्यों के ह्रास पर चिन्ता प्रकट करता है और पाठकों को इनके विषय में सोचने पर बाध्य करता है । यों तो, रिपोतार्ज़ में विनाशकारी घटना के वर्णन पर लेखक की दृष्टि टिकी होती है और पात्र उसके लिए विशेष महत्वपूर्ण नहीं होते, तथापि मानव-मूल्यों का नाश करने वाले कुछ पात्रों के अमानवीय कार्यों का वर्णन भी लेखक करता ही है । इस प्रकार एक वाक्य में यह कहा जा सकता है कि जब कोई समाचार केवल समाचार नहीं रहता, वरन् मानव-मूल्यों से जुड़कर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाता है तब उसे 'रिपोतार्ज़' कहते हैं हिंदी के रिपोतार्ज़-लेखकों में शिवदान सिंह चौहान, अमृत राय, प्रभाकर माचवे, लक्ष्मीचंद जैन, धर्मवीर भारती, प्रकाशचंद्र गुप्त आदि के नाम लिये जा सकते हैं ।

☛ **बोध प्रश्न**

19 आत्मकथा और जीवनी के मुख्य अंतर को एक वाक्य में स्पष्ट कीजिए ।

.....

20 जीवनी-लेखक द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले स्रोतों में से किन्हीं तीन का उल्लेख कीजिए ।

.....

.....

.....

21 जब लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों का वर्णन करता है तो उसे.....कहते हैं।

22 समाचार और रिपोतार्ज़ में क्या अन्तर है ? (दो पंक्तियों में लिखिए)

.....

.....

2.14 सारांश

इस इकाई में आपने हिंदी गद्य की विविध विधाओं की जानकारी प्राप्त की है । आशा है, इस इकाई का अध्ययन आपने ध्यानपूर्वक किया होगा और इसे पढ़कर आप गद्य की विविध विधाओं को अच्छी तरह समझ गये होंगे ।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

i) साहित्य और वाङ्मय में अंतर कर सकते हैं,
ii) साहित्यिक रचनाओं का वर्गीकरण कर सकते हैं,
iii) ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप साहित्य में विकसित नवीन विधाओं को बता सकते हैं,
iv) गद्य की विविध विधाओं यथा नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, निबंध आलोचना, रेखाचित्र, संस्मरण आदि के स्वरूप को समझ सकते हैं,
v) गद्य की विभिन्न विधाओं यथा नाटक और एकांकी, रेखाचित्र और संस्मरण, आत्मकथा और जीवनी आदि में अंतर कर सकते हैं,
vi) एक-दूसरे से मिलती-जुलती गद्यविधाओं यथा नाटक और एकांकी, आत्मकथा और जीवनी, रेखाचित्र और संस्मरण आदि में मिलने वाली समानता को भी समझा सकते हैं।

2.15 शब्दावली

वाङ्मय : किसी भाषा में रची गयी समस्त प्रकार की रचनाएँ ।
परिज्ञान : पूरा ज्ञान ।
आस्वादन : किसी रचना के पढ़ने या देखने से मिलने वाला आनंद ।
सृजनात्मक : सृष्टि या रचना करने की क्रिया ।
विश्वकोश : वह ग्रंथ जिसमें सभी विषयों या किसी विषय के सभी अंगों का विस्तार से वर्णन हो (इन्साइक्लोपीडिया) ।
संदर्भ ग्रंथ : वह पुस्तक जिसमें किसी दूसरी पुस्तक में आई हुई किसी रूढ़ बात का स्पष्टीकरण हो (रेफ़रेन्स बुक) ।
आह्लाद : आनंद, किसी रचना के पढ़ने या देखने से मिलने वाला आनंद ।
अनुकरण : नाटक में कवि द्वारा वर्णित पात्रों के क्रिया-कलाप की अभिनेताओं द्वारा की जाने वाली नकल ।
रूपक : रूपक में किसी पात्र के रूप, वेशभूषा, चाल ढाल आदि की नकल की जाती है । यह दृश्य काव्य का एक भेद है । नाटक इसका एक भेद है ।
पाश्चात्य : पश्चिम दिशा का (पाठ में पश्चिमी देशों के अर्थ में)
शास्त्रीय : शास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार ।
पराभाव : पराजय, हार ।
उन्मूलन : समूल नष्ट करना ।
दृश्यवत्ता : दृश्य रूप में उपस्थित किये जाने का गुण ।
कैमरा ट्रिक : कैमरा एक साथ एक ही व्यक्ति को एक ही समय में अनेक स्थानों पर उपस्थित दिखा सकता है। सामान्य व्यवहार में यह संभव नहीं है। इस प्रकार की विधियों को "कैमरा ट्रिक" कहते हैं।
निष्पक्ष : पक्षपात रहित ।
इतिवृत्तात्मक : पुरानी कथा या कहानी का कल्पना रहित वर्णन करना ।
प्रतिक्रिया : कोई क्रिया होने पर उसके विरोध में या परिणाम-स्वरूप दूसरी ओर होने वाली क्रिया।
प्रत्यक्ष शैली : जब उपन्यासकार उपन्यास लिखते हुए उसमें वस्तुओं अथवा घटनाओं आदि का स्वयं विवरण देने लगता है तो उसकी यह शैली प्रत्यक्ष शैली कही जाती है ।
परोक्ष शैली : पात्रों के संवादों के माध्यम से घटनाओं आदि का परिचय या विवरण देना परोक्ष शैली कहलाता है ।
पूर्वदीप्ति : कभी-कभी पात्र के चरित्र को विकसित करने के लिए या घटनाओं को नाटकीय ढंग से रखने के लिए लेखक कभी पहले की घटित घटनाओं का पात्र विशेष के द्वारा स्मरण कराता है और उनको वर्तमान घटना की पृष्ठभूमि के रूप में इस्तेमाल करता है। इस शैली को पूर्वदीप्ति शैली कहते हैं।
संगति : किसी कही बात या तर्क का अन्य कथित बात या तर्क के साथ मेल, कही हुई बात की प्रसंगानुकूलता ।

संबद्धता : एक बात के क्रम में दूसरी बात का जुड़ा होना ।
तिरस्कार : अनादर, अपमान ।
द्वन्द्व : दो पक्षों या आदमियों की लड़ाई, किसी व्यक्ति के मन में किसी विषय के बारे में भिन्न और विरोधी विचारों के उत्पन्न होने से अनिश्चय और तनाव की स्थिति ।
सम्यक : पूर्ण रूप से ।

बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1 वाङ्मय में सभी प्रकार की रचनाएँ आ जाती हैं, जबकि साहित्य में केवल उन्हीं रचनाओं का समावेश हो सकता है जिनके देखने, पढ़ने या सुनने से पाठक को आनन्द की प्राप्ति होती है । सूचनात्मक, विवेचनात्मक और सृजनात्मक वर्गों में आने वाली सभी कृतियाँ, 'वाङ्मय' कहला सकती हैं, पर इनमें से सृजनात्मक वर्ग की रचनाएँ ही 'साहित्य' में गिनी जाएँगी ।

2 i) कथानक (कथावस्तु)
ii) शैली
iii) रंगमंचीयता अथवा अभिनेयता
iv) प्रतिपाद्य

3 i) रेडियो नाटक
ii) दूरदर्शन नाटक

4

नाटक	एकांकी
i) एक से अधिक अंक ।	i) केवल एक अंक ।
ii) कथावस्तु विस्तृत ।	ii) कथावस्तु संक्षिप्त ।
iii) पात्रों की संख्या अधिक ।	iii) सीमित पात्र ।

5 i) दृश्य ii) ध्वनि iii) एक

6 तिलस्मी उपन्यास में इन्द्रजाल, जादू, अद्भुत कारनामें, अलौकिक व्यापार, तथा चमत्कार से पूर्ण घटनाएँ होती हैं ।

जासूसी उपन्यास की खास बात यह होती है कि ऐसे उपन्यास में नायक गुप्त रूप से किसी भेद या बात का पता लगाने के लिये चलता है । वह अद्भुत कारनामें करता है ।

7 i) उपन्यास में एक से अधिक कथाएँ एक दूसरे के समानान्तर चलती हैं । कहानी में एक कथा होती है।
ii) उपन्यास में कथा का विस्तार रहता है । कहानी में कथा संक्षिप्त होती है ।
iii) उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक होती है, कहानी में कम ।

8 i) पात्रों के कार्यों अथवा विचारों के द्वारा,
ii) पात्रों के वार्तालाप के द्वारा, तथा
iii) लेखक द्वारा पात्रों के गुण-दोषों का कथन ।

9 i) लघुता या संक्षिप्तता ii) विवरणविहीनता iii) घटनाविहीनता

10 क्रमबद्ध

11 i) (√) iii) (×)
ii) (√) iv) (×)

12 iii) (√)

13 ii) तथा iv)

14 i) मूल्यांकन iii) तटस्थ
ii) सहृदयतापूर्वक

15 निष्पक्षता, तार्किकता तथा विवेचन-विश्लेषण की क्षमता ।

16 i) सैद्धांतिक आलोचना ii) व्यावहारिक आलोचना

17 i) चित्र ii) अतीत

18 i) संस्मरण में तथ्यपरकता होती है, रेखाचित्र में कल्पना का पुट भी हो सकता है ।
ii) रेखाचित्र में लेखक के निजी व्यक्तित्व का कोई महत्व नहीं होता, किंतु संस्मरण में लेखक के निजी विचार किसी-न-किसी प्रकार आ ही जाते हैं ।
iii) विस्तार संस्मरण की विशेषता है और संक्षेप रेखाचित्र की ।

19 जहाँ आत्मकथा का लेखक अपने जीवन के बारे में खुद लिखता है, वहाँ जीवनी-लेखक किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में लिखता है ।

20 i) वर्ण्य विषय या उससे संबंधित विषयों पर लिखित पुस्तकों या लेखों का,
ii) मूल सामग्री जैसे चरित-नायक द्वारा लिखित डायरी, पत्रों आदि का तथा
iii) चरित-नायक के समकालीनों के संस्मरणों का ।

21 यात्रावृत्त या यात्रा-साहित्य ।

22 समाचार तथ्य पर आधारित होता है और उसका उद्देश्य सूचना देना भर होता है जबकि रिपोतार्ज मानव-मूल्यों से जुड़ कर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाता है ।

KEAMS